श्री धन्वन्तरये नमः

रक्तविक्षेप-रक्तचाप

(Blood-pressure)

विषय प्रवेश—

हमारे शरीरमें रात दिन रक्त सञ्चार हुआ करता है। वायु दोष से रक्त सञ्चारमें कमी या अधिकता होनेसे रक्तके स्वाभाविक दबावमें अन्तर आ जाता है। इससे या तो रक्तका प्रवाह मस्तिष्ककी ओर अधिक होता है या कम होने लगता है। इसे ही रक्तविक्षेप या रक्त-चाप अर्थात् ब्लडप्रेशर की बीमारी कहते हैं। यों तो रक्त पर परि-णाम होनेके कारण यह रोग रक्त सम्बन्धी है; किन्तु रक्तमें विक्षेप करने वाला वायु होता है, अतएव रक्त रोग होनेके साथ ही यह वात रोग भी है। इस विक्षेपके कारण वात संस्थान या नाड़ीमण्डल (नर्वस सिस्टम) पर असर पड़ता है और मस्तिष्कको इसके कारण परेशानी उठानी पड़ती है, इसलिये हम इसे शिरोरोगके अन्तर्गत मानते हैं। आयुर्वेदमें इसका वर्णन स्वतन्त्र रूपसे नहीं दिया गया। रक्तविक्षेपमें विकृत होनेके कारण रक्त सञ्चारके वर्णनसे ही उसका परिणाम निकाल लिया गया है। पहले जमानेमें इस बीमारीका इतना अधिक जोर भी नहीं होता था। यह बीमारी प्रायः बूढ़ोंको अधिक होती है, क्योंकि बूढ़ोंके शरीरमें स्वभावतः वायु की अधिकता हो जाती है या रक्ताल्पताके कारण उसका चाप घट जाता है। पहले लोगोंका खान पान विकृत नहीं होता था। प्रायः तृतीय अवस्थामें लोग तपस्या करते थे। वनमें निवास करते और संयमसे रहते थे। इसलिये उनका रक्तचाप संयत रहता था। आजकल बुढ़ापेमें भी लोगोंको चिन्ता और परिश्रमसे परेशान रहना पड़ता है। खान पान

अनियमित और नियम विरुद्ध हुआ करता है। अतएव यह बीमारी भी अधिक दिखाई पड़ने लगी है। इसलिये इसका पृथक वर्णन करना आवश्यक हो उठा है।

रक्तसंचार या रक्तविक्षेप-

हमारे शरीरमें रात दिन रक्तका सञ्चार हुआ करता है। हम जो आहार लेते हैं, उससे पहले रस बनता है। रससे रक्त बनता है और इस बनने की क्रियामें सारे शरीरमें रस-रक्तादि भ्रमण करते हुए शरीरको हृष्ट पुष्ट और आप्यायित करते रहते हैं। रञ्जक पित्तके प्रभावसे रसमें लालिमा आती है, एञ्जिनके समान हृदय रक्तको सारे शरीरमें घुमाता रहता है और फेफड़ोंमें छनकर रक्त शुद्ध होता रहता है। यदि हृदय अपना काम शुद्ध रूपसे करता रहता है तो रक्तका सञ्चार यथा नियम होता रहता है। यदि वह अनियमित प्रकारसे अधिक जोरसे विक्षेप करे तो मस्तिष्ककी ओर जोरसे रक्त चढ़ता है। यदि हृदय क्षीण हो और रक्त विक्षेप क्रियामें भी अल्पता आ जाय तो मस्तिष्कको यथेष्ट रक्तकी पूर्ति नहीं हो पाती है। इस प्रकार रक्तका प्रेरण व्यान वायुके द्वारा होता है और रस मिश्रित रक्त महाधमनी और उससे जुड़ी हुई छोटी छोटी धमनियों और उनकी भी शाखा प्रशाखाओं द्वारा स्रोत और शिराओंके द्वारा केशिकाओं तक पहुँचता है। जिससे शरीरका पोषण और संवर्धन होता है। इस विषय को सुश्रुत ने अच्छा समझाया है।

अनेक गुणस्योपयुक्तस्याहारस्य सम्यक् परिणतस्य यः तेजो भूतः सारः परम सूक्ष्मः स रस इत्युच्यते। तस्य च हृदयं स्थानं, स हृदयाच्चतुर्विंशति धमनीरनुप्रविश्य (ऊर्ध्वगादश, दशचाधोगामिन्यश्चतस्रः तिर्यग्गाः) कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयतिवर्धयति, धारयति, यापयति, जीवयति चादृष्ट हेतुकेन कर्मणातस्य शरीर मनुधावतोऽनुमानाद्गति-

रूपलक्षयितव्या क्षय वृद्धि वैकृतैः......स शब्दाचि जल सन्तानवदणुना विशेषोनु धावत्येवं शरीर केवलम् ।

(सूत्र स्थान अध्याय १४)

शरीर शास्त्र जानने वाले समझ सकते हैं कि धमनियोंके द्वारा किस प्रकार यकृत और प्लीहामें बना हुआ रक्त रक्तवाहिनियोंसे हृदय के दक्षिण भागमें पहुँचता है । वहांसे नीचे पहुँचकर द्विधाविभक्त हो दोनों फेफड़ोंमें शुद्ध होनेके लिये पहुँचता है । फेफड़ोंसे छनकर शुद्ध हुआ रक्त हृदयके वाम भागके ऊपरी हिस्सेमें पहुँचता है । वहांसे फिर नीचे पहुँचकर धमनीके द्वारा ऊपर नीचे की धमनियोंमें उत्तरोत्तर पहुँचता है । इस प्रकार बड़ी और छोटी धमनियों और बारीक रक्तवाहिनियोंसे होता हुआ सामनेकी शिराओंमें पहुँचता है । अर्थात् चक्कर लगाकर फिर हृदयके दाहिने भाग पर आ पहुँचता है । चक्कर लगाते समय शरीरके सब भागोंमें शुद्ध रक्त पहुँचाता रहता है और अशुद्ध भाग लेता हुआ वह फिर शुद्ध होनेके लिये हृदयमें पहुँचता है । यह चक्कर इतनी तेजीसे होता है कि डेढ़ मिनटमें उसकी एक आवृत्ति हो जाती है । हृदयसे रक्त जब महाधमनी (Aorta) में जाता है तब जो शब्द होता है उसीका स्पन्दन नाड़ीमें मालूम पड़ता है । इस साधारण रक्त सञ्चारमें मनुष्य के खान पानसे, बाहरी आघातसे, मानसिक चिन्ता और संक्रामक रोगोंके आक्रमणके प्रभावसे जो अन्तर पड़ता है ; उसीसे रक्तमें दबाव या चाप पड़ता है और रक्तविक्षेप होने लगता है ।

विवेचन—

आयुर्वेदमें इसका स्वतन्त्र वर्णन न होनेका यह भी कारण है कि यह कोई स्वतन्त्र व्याधि नहीं है । अन्य रोगोंके उपद्रव या उपसर्ग रूप में यह प्रायः प्रकट होता है । इस विषयको यूरोपियन वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं । अन्य रोगोंके कारण शरीरमें जो खलबलाहट पैदा

होती है, उससे शरीरमें रक्तचाप बढ़ जाता है। जब हृदयसे वाम निलयके निम्न भागमें संकोच शक्तिमें अन्तर पड़ जाता है तब ब्लड-प्रेसर बढ़ जाता है। इसीसे जब महा धमनीमें धमन किया हुआ, ठेला हुआ रक्त परिमाणसे अधिक हो जाता है तब भी रक्त चाप बढ़ता है। धमनियोंकी स्थिति-स्थापकता और स्निग्धता कम होना, रक्त विक्षेपमें कारणीभूत होता है। इसी तरह स्रोतसों और धमनियोंकी हिलन चलन की गति और शक्ति तीव्र हो जानेसे (वोजोमोटरटोन, वाजो=धमनी या स्रोत, मोटर=गति और टोन=शक्ति) विशेषकर केशवाहिनियोंकी प्रतिरोधक शक्ति बढ़नेसे रक्त चाप बढ़ता है। इसी प्रकार शाखागत रक्त वाहिनियोंकी प्रतिरोध या रुकावट की शक्ति बढ़नेसे भी रक्तचाप बढ़ता है। यही क्यों यदि रक्तमें चिकनापन अधिक बढ़ जाय तो भी ब्लडप्रेशर बढ़ जायगा। सारांश यह कि व्यायाम और ज्ञान तन्तुओं की गड़बड़ी (नर्वस डिस्टर्बेनसिस) से रक्तके दबावमें कमी या अधिकता हुआ करती है। जब इस प्रकार का दबाव लगातार कुछ दिनों तक कायम रहे तब हाईब्लडप्रेशर की सूरत पैदा हो सकती है। जब नाड़ीकी गति प्रति मिनट १६० हो अर्थात् रक्तकी गति १६० बार होती हो तब उसे विशेष दबाव कहा जायगा। चरक सूत्र स्थानमें कहा गया है कि "ओजोवहः शरीरे वा विधम्यन्ते समन्ततः। सूत्र ३०—६" अर्थात शरीरमें ओजोवहा नाड़ियां धमन करती हैं। खाली ओज ही नहीं छोटी छोटी शिराओं से शरीरका मल भी बहता रहता है। वह बड़ी सिरासे हृदयके दक्षिण अलिन्दमें पहुँचकर फुफ्फुसमें जाता है और वहां प्राणवायुसे मिश्रित होकर हृदयके वाम कोष्ठमें पहुँचता है। और शुद्ध होता रहता है। यह रक्तका स्वाभाविक विक्षेप है। जब उसमें अस्वाभाविकता आती है, तभी वह रोगका रूप धारण करता है। जब तक रक्त सञ्चारण स्वाभाविक रहता है, तब तक रोग नहीं माना जाता।

हृदयका स्पन्दन साधारणतः एक मिनटमें ७२ बार होता है। प्रत्येक धड़कनके समय हृदयकी पेशी संकुचित होती है और हृदयस्थ रक्तको स्थिति-स्थापक धमनियोंमें ठेल देती है। चाय, काफी, शराब, तमाखू आदिकी आदत होनेसे हृदयका सङ्कोच बढ़ जाता है, अधिक परिश्रम और चिन्तासे भी उसमें अधिकता आजाती है। खान पानमें संयम न रहनेसे भी रक्त विक्षेप बढ़ जाता है। सात्विक आहार विहार वालोंमें रक्त विक्षेप की वृद्धि अधिक मानसिक परिश्रमके कारण होती है। यही नहीं जब सूक्ष्म केशिका प्राणायतनमें फट कर रक्त-स्राव करती हैं तब पक्षाघात तक हो जाता है। मस्तिष्कके जिस भागसे रक्त बहता है, उसके कार्यमें बाधा पड़ती है, कभी-कभी बोलना बन्द हो जाता है। स्मरण शक्ति जाती रहती है आंखोंसे दिखाई नहीं पड़ता। ऐसी अवस्था प्रायः मध्य आयुमें होती है।

कारण —

रक्त विक्षेप की स्वाभाविकता नष्ट होनेके अनेक कारण होते हैं। हृदयके निलयकी वृद्धि होनेसे रक्त विक्षेपमें अस्वाभाविकता आती है, रक्तका दबाव अधिक बढ़ जानेसे भी विक्षेपमें विकृति होती है। इन दोनों कारणोंसे शारीरिक रक्तवाहिनियोंके कार्यमें अन्तर पड़ जाता है। कभी कभी मूत्रग्रन्थिमें शोथ और रक्ताभिसरणकी वृद्धि होती है। वृक्क तन्तुओंमें भी शोथ हो जाता है। कभी कभी रोगका आरम्भ मूत्रग्रन्थि-वृक्कसे ही होता है। धमनियोंमें कठिनता आ जाती है, जिससे रक्तका दबाव उत्तरोत्तर बढ़ता है। स्त्रियोंमें रजोधर्म बन्द होनेके समय अथवा उपवृक्क (एड्रीनेलाइन) का स्राव बढ़ने से महीनों तक ऐसी व्याधि रहती हैं और फिर बन्द हो जाती है। जब रक्तका परिमाण बढ़ जाता है तब रक्तमें पतलापन आ जाता है और उससे रक्त विक्षेप बढ़ जाता है। रक्तमें स्नेहन और चरबी बढ़ जानेसे भी रक्त विक्षेप बढ़ता है। ऐसी अवस्थामें कैसी व्याधियां

होती हैं इस पर सुश्रुतने अच्छा प्रकाश डाला है।

यदातु रक्तवाहीनि रस संज्ञा वहानि च।
पृथक् पृथक् समस्ता वा स्रोतांसि कुपिता मलाः॥
मलिनाहार शीलस्य रजो मोहावृतात्मनः।
प्रतिहत्यावतिष्ठन्ते जायन्ते व्याधयस्तथा॥
मदमूर्च्छाय मन्याया स्तेषां विद्याद्धि चक्षणः।
यथोत्तरं बलाधिक्य हेतुलिंगोपशान्तिषु॥

जब ब्लडप्रेशर ४० से ६५ वर्षकी आयु तक होता है, तब निम्नलिखित कारणोंमेंसे एक या अनेक कारण होते हैं। अधिक परिश्रम, उद्वेग, अधिक मानसिक परिश्रम, वातव्याधि, आलस्य, गुरु भोजन आदि। उद्योगमें असफलता होने पर भी क्षोभसे रक्त विक्षेपकी अधिकता हो सकती है। प्रायः ४० से ५० वर्षकी आयु वालोंको यह अधिक होता है। कभी-कभी २५ से ३५ वर्ष तकका अवस्थामें भी हो जाता है। चिन्तातुरता अधिक होनेसे ऐसे समय हो सकता है। विक्षेपका काम वायुका है। सोमका विसर्ग शक्तिप्रदान, सूर्यका आदान-आकर्षण है। कहा भी है—

विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्देहं कफ-पित्तानिलास्तथा॥

जो काम सोमका है, शरीरमें वही काम कफका है। जो काम सूर्यका है शरीरमें वही काम पित्तका है और वायुका जो विक्षेप कार्य बाह्य जगतमें है वही शरीरके भीतर भी है। वायुके विक्षेपके द्वारा गति सञ्चालन और शारीरिक यन्त्रोंमें मेकेनिक क्रिया सम्पादन करता है। डल्लन कहते हैं कि—

'विक्षेपः शीतोष्णादीनां विविध प्रकारेण प्रेरणम्''

अर्थात् शीत और उष्णताको आवश्यकतानुसार कम अधिक करनेकी प्रेरणा करता है, उसे व्यवस्थित रखता है। केन्द्रस्थ नाड़ी-

यन्त्रके द्वारा (सेण्ट्रल नर्वससिस्टम) अर्थात् मस्तिष्क और सुषुम्नाके द्वारा इस कार्यकी सिद्धि होती है। वायुकी रसवाहक शक्तिको आधुनिक विज्ञान कण्डक्टिविटीके नामसे पहचानता है। उष्ण पदार्थों के द्वारा जब नाड़ी तन्त्रसे शरीरमें उष्णता बढ़ती है तब पैत्तिक वेदना होती है। जब शीतके प्रभावसे नाड़ी तन्त्र कफ वेदना वहन करती है तब कफके रोग होते हैं। इन दोनों शक्तियोंमेंसे एक या दो गुणों की कमीसे स्निग्धत्व या उष्णताकी कमीसे वायुके विकार उत्पन्न होते हैं।

पित्तका गुण सूर्य गुण प्रधान है। शरीरमें पिंगला नाड़ी (सिम्पेथेटिक सिस्टम) उसका वहन करती है। मांस पेशियोंमें विद्युत-प्रेरण इसीके द्वारा होता है। पिंगला नाड़ी ही मनोवह स्रोत है। शरीरमें कोमलता, दया, क्रोध, धैर्यकी कमी इसीके कारण होती है। अपने आदान गुणके कारण शरीरके पोषक पदार्थ शरीरके उपयोगके लिये यह ग्रहण करती है, और नाड़ी तन्त्रके द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थान तक उसका प्रेरण होता है। जिससे शरीरमें चैतन्य शक्ति (एनर्जी) की उत्पत्ति होती है। उष्णताका संरक्षण कर काम अधिक कराना, शरीरको तेज प्रदान करना, आहारका पचन करना इसीके द्वारा होता है।

सुषुम्नाके दाहने इडा नाड़ी है जो कफको वहन करती है और जिसके दैवत सोम हैं। पाश्चात्य शरीर शास्त्री इसे पेरासिम्पेथेटिक कहते हैं। इसे एनावोलिक-पोषक समझा जाता है। नित्यके शारीरिक क्षयकी इससे पूर्ति होती रहती है। यदि शरीरमें गर्मी बढ़ जाय तो यह इसे क्षय भागमें लाती है। हृदयकी चालको धीमी करती है। पिंगला तो महास्रोत (एलीमेंटरी कैनाल) की क्रिया बन्द करने वाली है; किन्तु इडा उसकी गति और शक्तिको बढ़ाने वाली है। पिंगला ब्लडप्रेशर बढ़ाती है और शरीरके मधुरांश (ग्लूकोज) को दौड़ाती

है। किन्तु इडा रक्तचापको संयत करती और रसग्रन्थियों (लिम्फेटिक) को कार्य शील बनाती है। शरीरमें इडा और पिंगलाके तन्तु अनेक स्थानोंमें साथ ही साथ रहते हैं और एक दूसरे पर प्रभाव रखकर शरीर धारण करनेमें सहायक होते हैं। मस्तिष्कमें साधक पित्तकी उपस्थितिसे उष्णताकी व्यवस्था ठीक रहती है। पिंगलाकी आदान क्रियाको आधुनिक विज्ञानके शब्दोंमें केटाबोलिज्म और तर्पण क्रियाको एनाबोलिज्म कह सकते हैं। जब इन दोनोंकी क्रिया समान भावसे चलती है और शरीरमें धातु साम्यकी क्रिया रहती है तब उसे मेटाबोलिज्म कहते हैं। कफ शरीरका पोषण करने वाली शक्ति (लेटएटइनर्जी) है। यह कफ अनेक रूपोंसे शरीरमें अपना काम करती है। रक्त, रक्तज स्नेहन (लिम्फ), जलीय सीरम, मस्तिष्कका सेरेब्रोस्पाइनल फ्लूईड; थूक, आन्त्र रस, स्नेहांश, रसग्रन्थि, सन्धिस्नेहन, अस्थिमज्जा, वसा, शुक्र, मेद, मस्तिष्क, सुषुम्ना और शरीरस्थ द्रव सब कफका ही स्वरूप है। ब्रह्म हृदयका प्राणावह केन्द्र भी कफ धर्मी है। जब आदान-विसर्ग क्रियामें अन्तर पड़ता है तब वायुकी वृद्धि होती है और विकृत हुआ वायु रक्तचाप बढ़ा देता है। रक्तचापके कारण हृदयके निलयकी वृद्धि होती है, वृक्काशयमें कठिनता आ जाती है, जिससे ज्ञानतन्तुओंके द्वारा शरीरको पोषण मिलनेके बदले रोगको उत्तेजन मिलता है। क्योंकि धमनियोंको रक्त वहन करनेकी आज्ञा देने वाले गतितन्तु (वाजोमोटर सिस्टम) उत्तेजित हो जाते हैं। जिससे रक्त वहन करनेके लिये जो उत्तेजन मिलना चाहिये वह नहीं मिलता। फलस्वरूप अन्त स्रावी ग्रन्थियोंका अन्तः—स्राव बढ़ जाता है। ज्ञानतन्तुओंके उत्तेजित होनेसे उपवृक्कका स्राव बढ़ जाता है, जिससे रक्तके चापमें वृद्धि हो जाती है।

कभी कभी शरीरमें कुछ ऐसी रासायनिक क्रिया होती है, जिससे शरीरमें विष उत्पन्न हो जाता है। कभी कभी रोगोत्पादक कीटाणुओं

का विष भी रक्तविक्षेपमें कारणीभूत होता है। यहां तक कि सड़े हुए और हिलते हुए दांतके क्लेदका विष भी रक्तचाप बढ़ा देता है। आंतोंमें सड़न हो, पुरानी कब्जियत हो तो भी रक्तचाप बढ़ सकता है; शराब, चाय और काफीके विषसे भी रक्तचाप बढ़ जाता है। सीसे का विष भी रक्तचाप बढ़ानेमें कारणीभूत होता है। ऐसे विषका शाखागत सूक्ष्म धमनियों पर असर पड़ता है, जिससे शाखा प्रवाहमें प्रतिरोध होता है। जब वहांसे रक्त संवहन ठीक नहीं हो पाता तब वह धक्का देकर पीछे लौटता है और ऐसी अव्यवस्थासे रक्त चापकी वृद्धि होती है। जब शारीरिक धातुओंकी समतामें विकृति आती है तब भी शरीरमें विष उत्पन्न होता है।

शरीरमें जब रक्तका परिमाण अधिक अथवा अल्प होता है तब रक्तविक्षेपमें भी अधिकता अथवा अल्पता हो जाती है। इसी तरह भोजनके पश्चात् रक्तविक्षेप बढ़ जाता है। स्वस्थावस्थामें भी व्यायाम और परिश्रमके कारण रक्तविक्षेप बढ़ता है। शर्करासे शरीरमें उष्णता बढ़ती है। अतएव मधुमेह या शर्करामेहमें भी रक्त-चापका परिमाण बढ़ जाता है। यदि भोजनके साथ अधिक नमक खाया जाय तब भी रक्तचाप बढ़ेगा। धमनी केशिकाओंके संकुचित होनेसे यदि रक्त सञ्चारमें बाधा पड़े तो रक्तविक्षेप बढ़ जाता है। मानसिक उत्तेजनाके समय धमनी केशिकाएं संकुचित होती हैं; अतएव रक्तचाप भी बढ़ जाता है।

वर्तमान परिस्थिति—

इसकी कारणपरम्पराका जो ऊपर विवेचन किया गया है, उससे स्पष्ट है कि आजकलका हमारा नकली और संघर्षमय जीवन ऐसी व्याधिके लिये कारणीभूत होता है और ऐसी व्याधिके लिये उर्वर भूमि साबित होता है। दिनोंकी सफर हम घण्टोंमें कर लेते हैं, हमारी

संस्थाएं और हमारे व्यावसायिक प्रयत्न सब उत्तेजना पूर्ण होते हैं। मनुष्योंका जीवन इतना व्यस्त, संघर्षमय और उलझनदार हो गया है कि शरीर और मनको शान्ति और विश्राम नहीं मिल पाता। व्यायामके लिये समय और सुविधा नहीं, मनोरंजन और घूमटहल कर चित्तकी चञ्चलता मिटानेका अवकाश नहीं। साठ सत्तर वर्ष पहले देहातोंमें जिस प्रकार दूध घीकी विपुलता, कसरत कुश्ती लड़नेकी जैसी प्रवृत्ति देखी जाती थी, वैसी अब वहां भी नहीं दिखती। ऐसा मालूम पड़ता है कि वह दुनियां दूसरी थी और यह दुनिया दूसरी है। खानपानके सम्बन्धमें जीभमें लगाम नहीं। माता पिताके स्वास्थ्य और रहन सहनका प्रभाव सन्तान पर पड़ना अनिवार्य है। अतएव नाड़ी संस्थानकी दुर्बलता बढ़ती पर है। पचहत्तर वर्ष पहले हजार दो हजारमें कहीं किसी स्त्रीको हिस्टीरिया होता रहा हो; किन्तु अब तो स्त्रियोंकी कौन कहे पुरुषोंमें भी यह बीमारी देखी जाती है। ऐसे लोग रक्तचापके शिकार हों तो आश्चर्य ही क्या है?

हमारे भावोंका प्रभाव नाड़ी और मस्तिष्क पर पड़ना अनिवार्य है। अनियन्त्रित रक्ताधार मस्तिष्कको चल विचल स्थितिके कारण होती है। जिन लोगोंका चेहरा बातकी बातमें तमतमा उठता है, थोड़े ही कारणोंसे जिन्हें सर्दी और जुखाम हो जाता है। हाथ और पैरोंके तलुवे पसीनेसे भीगे रहते हैं, नाकसे खून गिरता है या जिन्हें चक्कर आ जाते हैं, मूर्छा हो जाती है, ऐसी स्थितिमें भी जिन्हें विश्राम नहीं मिलता है उन्हें रक्तचापकी शिकायत हो सकती है। बात बातमें जिन्हें क्रोध आ जाता है, जो अपनेको अरक्षित समझता या चिन्तित रहता है, जिसे शरीर शक्तिसे अधिक परिश्रम करनेके लिये लाचार होना पड़ता है, उन्हें रक्तचापका शिकार होना पड़ता है। ऐसे लोगोंके मस्तिष्क केन्द्रगत रक्ताधारोंके आवरण अपनी सूक्ष्मपेशियोंसे सम्बद्ध नाड़ियोंके रक्ताधारोंका आयतन घटा देते हैं।

जिससे निरोधकी दिशामें रक्त अधिक वेगसे प्रवाहित होने लगता है। परिणामतः रक्तचापमें वृद्धि हो जाती है। ऐसी दशामें रक्तका वेग बनाये रखनेके लिये हृदयको भी अधिक जोर लगाना पड़ता है। केन्द्र इस बढ़े हुए शारीरिक श्रमके लिये उत्पन्न आवश्यकताकी पूर्ति नहीं कर पाता। भावावेग और उसके प्रयत्न रक्तचाप बढ़ानेका कारण होते हैं। भय-क्रोध-आक्रमणात्मक इच्छाएं चाहे जैसी या जिस कारणसे हों वे रक्तचाप बढ़ानेके लिये खतरेकी घण्टी हैं। यदि ऐसे भयादिक भावावेग क्षणस्थायी हों, उनका समाधान शीघ्र हो जाय तो कुछ समयमें मानसिक शान्ति होनेसे रक्तचापकी व्याधि नहीं आती। अन्यथा दीर्घकाल व्यापी भावनाओंका असर अनिवार्य रूपसे रक्तचाप बढ़ानेका कारण होता है।

पूर्वरूप–

रक्त विक्षेप रोग होनेके पहले शरीरमें पसीना अधिक आता है, कभी नहीं भी आता, जब सिम्पेथेटिक नाड़ी तन्तु उत्तेजित रहते हैं तब पसीना अधिक आता है और जब वे सुस्त रहते हैं तब पसीना नहीं आता। सन्धियोंमें शिथिलता और मनमें आलस्य बढ़ जाता है, हृदयमें कमजोरी मालूम पड़ती है, शरीर गिरा सा शिथिलता युक्त रहता है। धमनियोंमें स्फुरण और फटने की सी पीड़ा होती है। आंखों के सामने अन्धेरा मालूम पड़ता तथा चक्करसे आते हैं।

लक्षण और सम्प्राप्ति–

रक्तविक्षेप यथार्थमें कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है। ब्लडप्रेशर या रक्त-विक्षेप लाक्षणिक नाम है। इसमें मुख्य वातविकृति रहती है; अतएव वात विकारके लक्षण तो स्थायी रूपसे इसमें रहते ही हैं, शेष लक्षण जिस प्रधान विकार या रोगके कारण यह व्याधि होती है उसके लक्षणोंसे संयुक्त लक्षण इसमें उपस्थित रहते हैं। कभी कभी तो

मनुष्य स्वस्थ मालूम पड़ता है ; किन्तु यन्त्र द्वारा परीक्षा करने पर मालूम पड़ता है कि उस मनुष्यमें रक्त विक्षेप बढ़ा हुआ है। किन्तु शिरोवेदना, शिरका भारी रहना, चक्कर आना, माथे और चेहरे की शिराएँ रक्तसे भरी हुई मालूम पड़ना, धमनियोंमें रक्त भार बढ़ा हुआ मालूम पड़ना, साधारण लक्षण होते हैं। आधे शिरमें दर्द, स्मरणशक्तिमें कमी, चित्त भ्रम और मानसिक उच्चाभिलाष भी देखा जाता है। क्लान्ति बोध हो, थकी सी लगी रहे, श्वास और हँफी बढ़ी रहे, दिल की धड़कन अधिक हो जावे, हृदयके ऊपर और छातीमें दर्द होना भी रक्तविक्षेपका लक्षण है। पेशाब कम हो, क्रोध अधिक मालूम हो, कभी कभी नाकसे, आंखसे, छातीसे, आमाशयसे मुख द्वारा रक्त गिरता हो। कभी कभी पैरोंमें और कभी सारे शरीरमें शोथ हो जाता है। रोगीको गम्भीर रोगका सन्देह हुआ करता है और यदि उससे कहा जाय कि तुम रोगी हो तो वह बहुत दुःखी होता है। हृदयकके निलयका निचला भाग (वेण्ट्रीकल) बढ़ जाता है। मस्तिष्कमें भी विकृति आ जाती है। कभी कभी पेशाब बढ़ जाता है, पेशाबमें अलब्यूमन अधिक रहता है।

भिन्न भिन्न कारणोंसे धमनियोंके भीतरी परतमें शोथ हो जाता है, क्षीणताके कारण नये तन्तुओं और पुराने तन्तुओंमें मेल होना कठिन पड़ता है। धमनियोंके पोलेपनमें कमी पड़ जाती है, धमनी टेढ़ी हो जाती है, उसमें कोमल तन्तुओंके बदले रूक्ष और कठिन तन्तु आ जाते हैं, सूक्ष्म धमनियां तो बिलकुल भर जाती हैं, इससे वहां के भागोंमें रक्त की पूर्ति अच्छी तरह नहीं हो पाती। कभी कभी तो वहां रक्त पहुँचता ही नहीं, धमनी कड़ी पड़ जानेके कारण रक्त बहन करनेमें पूरी सहायता नहीं कर पाती, जिससे रक्त चाप बढ़ जाता है। इस विक्षेपके कारण धमनियोंकी कठिनता बढ़ जाती है।

रक्तसञ्चार और रक्तचाप की क्रिया पांच अवयवोंके द्वारा होती

है। हृदय रक्तको आगे ढकेलता है। महा धमनीमें रक्तके जानेके समय स्थिति स्थापक अन्तरपटके द्वारा एक प्रवाह सा बना रहता है। सूक्ष्म धमनियां प्रत्येक भागमें आवश्यक रक्त पूर्ण करनेके लिये संयम द्वार हैं। इसी तरह तन्तु वाहिनियां (केपिलरी वेंस) सारे शरीरमें जहरका काम करती हैं। शिराएँ अशुद्ध रक्त हृदयमें लौटा लाकर फुफ्फुसमें शुद्ध करनेके लिये पहुँचाती हैं, जिससे रक्त सञ्चार क्रिया चलती रहती है। रक्त चाप बढ़नेसे इन अवयवों की क्रियामें भी अन्तर पड़ता है।

रक्त विक्षेप होने पर चेहरे पर फीकापन आ जाता है, अजीर्णके चिह्न प्रकट होते हैं। ज्यों ज्यों बीमारी बढ़ती है त्यों त्यों शाखागत धमनी अकड़ने लगती है। दो तीन वर्षमें अधिक कड़ी पड़ जाती है। हाई-ब्लडप्रेशर हो जाने पर हृदयके वाम निलयके निचले खण्ड(लेफ्ट-वेंट्रीकल्स) की वृद्धि हो जाती है। महाधमनीकाशब्द बढ़ जाता है। कई वर्ष तक रोगी स्वस्थ सा मालूम पड़ता है। यदि वृक्क विकारके लक्षण न हों तो पेशाब बढ़ जाता है।

हृदय, मस्तिष्क या वृक्कमें से जहां की धमनीमें कड़ापन आ जायगा वहां रोगके लक्षण प्रकट होंगे। कभी कभी रोगीका वजन जल्दी जल्दी घटने लगता है, यकृत सिकुड़ जाता और कड़ा पड़ जाता है। निर्बलता बढ़ती जाती है, शरीरमें रक्तहीनता और पाण्डु तथा कामलाके लक्षण दीखने लगते हैं। हृदयमें विकार बढ़ जाता है, महाधमनी की शाखाओंसे हृदयको रक्त पहुँचता है, जब किसी कारणसे इन धमनियोंमें रक्तका सञ्चार होना बन्द होता है तब हृदय का चलना बन्द हो जाता है और तब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। कभी कभी रक्तमें रक्त की गांठ पड़ जाती है, वह गांठ धमनीमें पैठ कर रक्तके सञ्चारमें रुकावट उत्पन्न कर देती है। धमनियोंमें रक्त बहुत कम पहुँचता है, इससे हृदयमें वेदना या शूल उत्पन्न होता है। ऐसा शूल

प्रायः हृदयके वाम भागमें होता है। यदि ऐसे शूलका आक्रमण बारम्बार हो तो रोगी कुछ दिनोंमें मृत्युको प्राप्त होता है।

धमनियोंकी कठिनतासे हृदयका अवसाद बढ़ जाता है। हृदय की चाल क्षीण हो जाती है। साथ ही तन्तुओंमें भी क्षीणता आ जाती है। यही नहीं हृदयके चारों ओर की दीवालका विस्तार बढ़ जाता है। इस विस्तार (Aneurism of the heart) के कारण हृदय फैल जाता है। हृदय वृद्धिके कारण हृदय चौड़ा हो जाता और शिथिल पड़ जाता है। रोगी हृदय की कमजोरी की शिकायत करता है। कभी कभी कभी चिकित्सकको रोग निर्णयमें धोखा होता है। रक्तसञ्चापके कारण धमनी काठिण्य होते ही शाखागत धमनियों-का प्रतिरोध होता है और हृदयके निलयका सङ्कोच होता है। किन्तु जब ब्लडप्रेशर की बीमारी स्थिर हो जाती है तब धमनी काठिण्य और हाईब्लडप्रेशर साथ साथ बढ़ते हैं। यह लक्षण रक्ताभिसरण दोष प्रकट करने वाले हैं। ब्लडप्रेशरके कारण मस्तिष्कमें भी लक्षण प्रकट होते हैं। इनमेंसे कुछ लक्षण नवीन और कुछ जीर्णता सूचक होते हैं। यदि मस्तिष्क की रक्तवाहिनी टूट जाय तो रक्त स्राव होता है। उपदंश वालोंमें प्रायः ऐसा होता है। इससे अल्प काल स्थायी पक्षघात, (Hemiplegia), एकाङ्गवात (Monoplegia) और जिह्वास्तम्भ (Aphasia) हो जाता है। ऐसी दशामें एक अहोरात्रिमें लक्षण दूर हो जाते हैं। कभी कभी अधोशाखा वात (Paroplegia) भी हो जाता है। अपस्मारके से हमले भी हो सकते हैं।

विकृति विज्ञान—

इस रोगसे मरे हुए रोगियोंका शवच्छेद करने पर धमनी काठिण्य वाले रोगियोंके शवमें वृक्क विकार दिखाई देता है। धमनीकी

कठिनता सर्वाङ्गमें रहती है या वृक्कमें जहां तहां थेगड़े लगे हुए दाग मालूम पड़ते हैं। इसे वृक्क सङ्कोच (Contracted kidney) कहते हैं। विशेषकर वृद्ध रोगियोंमें ऐसा अधिक मालूम पड़ता है। युवा रोगियोंमें कम। यह नहीं कहा जा सकता कि सर्वाङ्ग धमनी काठिण्यके कारण ऐसा वृक्क संकोच अथवा वृक्कगत संकोचके कारण सर्वाङ्ग धमनी काठिण्य होता है। जिन्हें अधिक भोजनके कारण यह बीमारी होती है उनकी आंतोंको अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इससे आंतों और पक्वाशयके आसपास की धमनियोंमें वायु दोषसे कड़ापन आ जाता है। प्लीहा की रक्त वाहिनियां अधिक विकृत होती हैं। बद्धकोष्ठका दोष बढ़ जाता है और कभी मस्तिष्क क्षीणता आने लगती है। यदि सीसाके विषके कारण व्याधि हो तो आंतोंमें बड़ी पीड़ा होती है। रक्त वाहिनियोंमें आक्षेप भी होते हैं। पेटकी पीड़ाके साथ ही हृदयशूल भी होता है। शाखागत अर्थात् हाथ पांवको धमनियोंमेंशोथ होने पर उनके पोलेपनमें कमी हो जाती है। यदि रक्त गांठ रक्तसञ्चारके साथ ऐसी जगह पहुँच जाय तो रक्त संवहन रुक जाता है। जिससे उधरका अङ्ग सूखने लगता है और पैरों में अल्प स्थायी पक्षाघातके लक्षण दीखने लगते हैं। पैर की शिराओंमें कड़ापन हो जानेसे थोड़ा भी चलने पर पैर दुखते हैं, जल्दी जल्दी चलनेसे भी पैरोंमें दर्द होता है। रोगीको ऐसा झटका मालूम पड़ता है कि उसे खड़ा हो जाना पड़ता है। कभी कभी रोगी पड़ रहता है और कुछ आराम करनेके बाद चल सकता है। हृदय शूलमें भी ऐसा ही होता है। मांस पेशियोंमें गोला चढ़ता है। प्रायः रातमें गोला अधिक चढ़ता है या पैरोंमें चुनमुनी मालूम पड़ती है। पैर ठंडे पड़ जाते हैं। पैरकी धमनियां कड़े डोरेके समान अकड़ जाती हैं। उनका स्पन्दन नहीं हो पाता। धमनियोंकी कठिनताके कारण रक्त-वहन रुकता है, जिससे अस्थायी लँगड़ापन मालूम पड़ता है। चलनेमें

कठिनाई होती और जांघमें दर्द होता है। पैरकी महाधमनीमें भी शोथ हो जाता है। आघात, उपदंशके चट्टे और शराब तथा तमाखू की आदत वालोंमें यह बातें अधिक दिखाई पड़ती हैं। रक्त की गांठ के कारण जब नसोंमें शोथ होता है, तब रक्त प्रवाह रुक जानेसे पैरमें नीलिमा दौड़ जाती है। ऊपरका चमड़ा ठण्डा मालूम पड़ता है, कभी कभी पसीना भी आता है। वहां ठण्डी या गर्मीका बोध नहीं होता, पैरका अंगूठा श्याम रङ्गका हो जाता और सूख जाता है।

उपद्रव—

यदि ब्लडप्रेशरका रोगी आहार-विहारके नियमोंका पालन न करे तो रक्त संवहन यन्त्र हृदय, धमनी, शिरा, और वृक्कमें ज्यों ज्यों रोग के चिन्ह बढ़ते जाते हैं, त्यों त्यों इनके विकार भी बढ़ते जाते हैं। सिरा और धमनी की कठोरता तो इसके मुख्य लक्षण हैं। धमनियों के रूप रङ्ग और आकृतिमें विकृति आ जाती है। तन्तुओंको रक्त न मिलनेके कारण उनकी क्रियामें अन्तर आने लगता है। धमनियों की दीवालमें मोटापन आ जाता है। शंख कपालकी धमनी मोटी पड़ कर दिखने लगती है। रोग निर्णयके समय हाथ की धमनी, बांह की धमनी, पैरों की धमनी और आंखकी धमनी की परीक्षा की जाती है; क्योंकि विकारका बोध यहां अधिक होता है। हृदय और वृक्क पर इस रोगके उपद्रव निश्चित रूपसे होते हैं। धमनियोंमें जो अड़चन आती है, उसका कारण वहां चूनेका सा खाद्य पदार्थ बढ़ जाना है। यदि उपद्रव बढ़े तो हृदय और वृक्क अधिक बिगड़ते हैं। शिरोवेदना के साथ, चक्कर आना और कानोंमें सनसनाहट मालूम पड़ना इसके उपद्रव हैं। थोड़े परिश्रमसे ही सांस फूलने लगती है। सुस्ती, उदर रोग, पचन शक्ति की कमी, माथेमें धमधमाहट और धमनियोंमें फटफटाहट होना भी उपद्रव है। जब तक माथा ऊंचा रखकर न

लेटें तब तक शिरमें दर्द होता है और नींद नहीं आती है। विशेषकर हृदयके वाम निलय (वेंट्रिकल) का कार्य बन्द होकर हृदयकी चाल बन्द होनेका डर रहता है। मस्तिष्कमें अतिरिक्त रक्तका दबाव पड़नेसे भी मृत्यु होनेका भय रहता है। वृक्कके रोगी होनेसे पाण्डु रोग और रक्त हीनता होनेका भी उपद्रव होता है। सबसे बड़ा उपद्रव इस रोगमें नींद न आनेका है। अनिद्रा होनेसे रोगीकी घबड़ाहट बहुत बढ़ती है। हाईब्लडप्रेशरमें यदि नाड़ी धीमी चले तो समझना चाहिये कि हृदयको बहुत परिश्रम बढ़ जानेके कारण ऐसा हो रहा है। क्योंकि धमनियों के अकड़ जानेसे हृदय रक्त संवहनमें असमर्थ रहता है। पैरोंमें गोला चढ़ना और आक्षेप आना भी उपद्रव रूप है। मस्तिष्कमें रक्तका सञ्चार कम होनेसे लकवा मारनेका भय रहता है। हृदयके क्षीण होनेसे तिल्ली बढ़ जाती है। पाचन शक्ति घट जाती है, वायुका जोर बढ़ जाता है और बद्धकोष्ठ जोर मारता है। ऐसी दशामें रक्तमें गांठें पड़ जाती हैं। कभी-कभी उपद्रव रूपमें ओज क्षीण हो जाता और वात संस्थानमें अवसन्नता आ जाती है। जिसे डाक्टर लोग "न्यूरेस्थेनियां" नामसे पहचानते हैं। ऐसी दशामें उत्साह की कमी, बिना परिश्रम थकी, अनिद्रा और ज्ञानतन्तुओंकी अवसन्नता होती है। मस्तिष्कके पिछले भागमें वेदना होती है। कभी कभी शिरके अगले भागमें और अगल बगलमें भी वेदना होती है। अधिक विकृति होने पर आधाशीशीका दर्द होने लगता है। आंखोंके सामने अन्धकार मालूम पड़ता है, मस्तिष्कमें शोथ हो जाता है, मूर्छा आनेका सन्देह होने लगता है। यही नहीं कभी कभी मूर्च्छा आ भी जाती है। स्मरणशक्ति घट जाती है। अपस्मारकके से दौरे होते हैं। हृदयका शूल और हृदयकी धकधक बढ़ जाती है। हृदय बन्द होनेका डर रहता है। शरीरमें विषका सा असर मालूम पड़ता है, जिसे सुश्रुत "आखोर्विषमिव शुद्धं तद्देह

मनुसयेति" चूहेके विषके समान भयानक बतलाते हैं। आंखकी धमनीसे या मस्तिष्कसे रक्तस्राव होना भी उपद्रव है। मूत्रके साथ रक्त जाना, अनियमित वीर्य स्राव, कफके साथ रक्तका जाना भी उपद्रव रूप है। प्रायः नव से १८ महीने तकमें उपद्रवोंके दर्शन होते हैं।

प्रकार भेद –

साधारणतः रक्त विक्षेप तीन प्रकारका होता है। प्रथम वह स्वाभाविक रक्त विक्षेप है जो नित्य रक्तसंचार विधिके कारण बराबर होता रहता है और जिसके कारण शरीरका धारण एवं पोषण होता है। इसी विधिके द्वारा अशुद्ध रक्तकी शुद्धि होती रहती है। शुद्ध रक्त ही शरीरको स्वस्थ रख सकता है और प्राणियोंके बल, वर्ण एवं सुख आयुष्य वृद्धिका कारण होता है। चरक में लिखा है।

तद्विशुद्धं हि रुधिरं बल वर्ण सुखायुषा।
युनक्ति प्राणिनं प्राणः शोणितं ह्यनुवर्त्तते॥

सूत्र २४

शुद्ध रक्त रहे तो प्रायः रोग होनेकी सम्भावना नहीं रहती। इसलिये **शुद्ध रक्त की पहिचान** समझ रखना भी आवश्यक है। सुश्रुतमें शुद्ध रक्त की पहिचानके सम्बन्धमें लिखा है :—

प्रसन्न वर्णेन्द्रिय मिन्द्रियार्था, निच्छन्त मव्याहत पक्तृवेगम्।
स च्चान्वितं पुष्टि बलोपपन्नं, विशुद्ध रक्तं पुरुषं वदन्ति॥
तपनीयेन्द्रगोपाभं पद्मालक्तक सन्निभम्।
गुञ्जाफल सवर्णं चेत्, विशुद्धं विद्धि शोणितम्॥

सु० सू० १४

ऐसे शुद्ध रक्त की सँभाल रखना सर्वथा कर्तव्य है। क्योंकि शरीरको सतेज रखनेके लिये इसकी नितान्त आवश्यकता है।

इन्द्रगोप प्रतीकाशं संहत मविवर्णं च प्रकृतिस्थं जानीयात् ।
देहस्थ रुधिरं मूल, रुधिरेणैव धार्यते ।
तस्याधानेन सरक्ष्यं रक्त जीव इतिस्थितिः ॥

सु० १४

ऐसा इन्द्रगोप कीड़ेके रंगका विशुद्ध लाल तथा घुंघची या आलतेके समान रक्त शुद्ध होता है, उसे जीवनकी रक्षाके लिये यत्न पूर्वक सुरक्षित रखना चाहिये।

(२) दूसरा रक्तविक्षेप वह है जो आवश्यकतासे अधिक जोरके साथ होता है और ऊपर चढ़कर मस्तिष्कमें अशान्ति उत्पन्न कर रोगोत्पत्तिका कारण होता है। इसे उच्चैः रक्तविक्षेप या हाईब्लडप्रेशर कहते हैं। खान-पानकी गड़बड़ी, चाय, तमाखू, शराब आदि उत्तेजक पदार्थोंके सेवनसे रक्तकाविक्षेप बढ़ता है उससे हृदयके निलय की वृद्धि होती है, रक्त वाहिनियोंके स्वरूप और कार्यमें अन्तर पड़ता है, धमनीकी दीवारोंकी स्थितिस्थापकता नष्ट होती है और रक्त विक्षेप बढ़ता है। अधिक भोजन, अम्ल विपाकी पदार्थ और मांस सेवन करनेकी आदत हो जानेसे धमनियोंमें विकृति होती है, आंतोंमें आहार सड़ता है, उससे उत्पन्न विष रक्तमें मिलकर आंतों एवं मूत्राशय और तत्रस्थ धमनियोंको विकृत करता है। अम्ल पदार्थोंका विपाक भी अम्ल होता है, वह रक्तमें शोषित होता है तब रक्तके स्वाभाविक क्षार गुण को क्षीण या नष्ट कर देता है। इससे भी धमनियोंमें विकृति आती है। मछली, मांस, अंडा, चावल, गेहूं, मिठाई आदि पदार्थोंसे भी शरीरमें अम्लता बढ़ती है। शाक, सब्जी, दूध, फल आदि क्षार वर्धक पदार्थ हैं; अतएव इनका सेवन करने वाले मनुष्योंमें क्षार संरक्षण होता है, रक्त शुद्ध रहता है और उनके रक्तमें रक्त विक्षेप नहीं होने पाता। वातरक्त, मधुमेह,

वृक्कप्रदाह आदि रोगोंके उपसर्गसे भी धमनीकी दीवारों में विकृति होती है, जिससे उच्चैः रक्त विक्षेपमें सहायता मिलती है। मानसिक परिश्रम, अपरिमित भोजन, वृद्धावस्था आदि कारणोंसे धमनियोंमें कड़ापन आता है, वे अकड़ जाती हैं, इससे रक्तका दबाव बढ़ता है। अतः स्रावी ग्रन्थियोंके स्रावमें रुकावट पड़नेसे स्त्रियोंके मासिक धर्मकी रुकावट या बंदी होनेसे भी रक्त विक्षेप बढ़ता है। शरीरके रक्तका परिमाण बढ़ने, रक्तमें चिकनाई बढ़ने या शरीरमें मेद बढ़नेसे भी रक्त विक्षेपकी वृद्धि होती है। रक्तविक्षेप बढ़नेसे हृदयको अधिक कार्य करना पड़ता है, उसकी पेशियां मोटी पड़ जाती हैं, रक्त वृद्धि और हृदयके कार्यकी वृद्धि होनेसे हृदयकी पेशियां प्रसारित होती हैं, मस्तिष्कको धमनियोंमें रक्त वृद्धि होनेसे उनके फटनेका डर रहता है। मस्तिष्क-की धमनी फटनेसे मूर्छा, सन्यास और मृत्यु तक हो सकती है। हृदय की क्रिया बन्द होनेसे हार्ट फेल होकर भी मृत्यु होनेका भय रहता है। इस सम्बन्धमें पहले बहुतसी बातोंका विवेचन हो चुका है। उच्चैः रक्त विक्षेप होने पर धमनियां भरी हुई रहती हैं, मालूम पड़ता है धमनिया फट जावेंगी, आधा शिर दर्द करता है, चित्त-भ्रम बढ़ जाता और स्मरणशक्तिका नाश होने लगता है। थोड़े ही परिश्रमसे हंफी आती, छाती धड़कने लगती, स्वभाव चिड़चिड़ा और क्रोधी हो जाता है। मानसिक अवसाद बढ़ जाता है। कुछ करनेकी इच्छा नहीं होती. समूचे सिरमें विशेष कर सिरके पिछले भागमें वेदना होती है। चक्कर आते हैं, सिरमें धमक और कानों में सनसनाहट रहती है। धमनी फटनेसे बेहोशी और पक्षाघात हो जाता है। पेशाबमें कमी और निद्रा नाशकी शिकायत होने लगती है। हृदयकी धड़कन बढ़ी हुई रहती है, कभी कभी शरीरमें शोथ भी होता है। ये लक्षण तथा पहिले जो लक्षण लिखे गये हैं उनकी

उपस्थिति होने पर हाई ब्लडप्रेशरका अनुमान होता है। ऐसी दशा में किसी चिकित्सकसे परामर्श कर ब्लडप्रेशर नापनेके यन्त्रसे रक्त विक्षेपकी स्थिति मालूम करे और उचित समय तथा चिकित्सासे रोग दूर करनेका प्रयत्न करे। असावधानी करनेसे हृत्साद और हृदय की क्रिया बन्द होनेका भय रहता है। धमनी फटनेसे सन्यास और पक्षाघात होनेका अन्देशा रहता है। ऐसी दशामें मृत्यु भी हो सकती है। हाईब्लडप्रेशर होने पर धमनियोंमें कड़ापन आना अनिवार्य है। इसे डाक्टरीमें स्क्लेरोसिस कहते हैं। इस कारणसे सम्पूर्ण रक्त संवहन क्रियामें अन्तर पड़ जाता है। धमनी काठिन्य और रक्त विक्षेपकी अवस्था अन्य कई रोगोंमें भी होती है। अतएव निपुण चिकित्सककी सलाहसे यह भी समझ लेना आवश्यक है कि क्या रोगके उपसर्ग रूपमें यह व्याधि उत्पन्न हुई है? क्योंकि ऐसी दशामें ब्लडप्रेशर स्वतन्त्र व्याधि नहीं किसी कारण रूप रोगका कार्य या उपद्रव होता है। जब तक मूल रोगकी भी चिकित्सा न हो तब तक हाईब्लडप्रेशरका ही उपाय करनेसे स्थायी लाभ नहीं होता।

(३) साधारण रक्त सञ्चार तो रोग नहीं जीवन व्यापारका एक आवश्यक कार्य है; किन्तु हाई ब्लडप्रेशर चाहे स्वतन्त्र रोग माना जाय चाहे उपद्रव या किसी अन्य रोगका लक्षण माना जाय; किन्तु वह है व्याधि ही। रोग रूप रक्त विक्षेपकी एक दूसरी अवस्था भी होती है, जिसे नीचैः रक्तविक्षेप (लोब्लडप्रेशर) कहते हैं। जैसे रक्तकी अधिकता और रक्तका दबाव बढ़ना व्याधि रूप होता है उसी प्रकार रक्तकी कमी होना भी व्याधि रूप है, क्योंकि उससे हृदय में आवश्यकतानुसार रक्त नहीं पहुँचता; अतएव मस्तिष्कमें भी रक्त की कमी रहती है। रक्तकी कमी होनेसे वात संस्थानमें वायुकी वृद्धि होती है और उसके कारण रोगकी उत्पत्ति होती है। किसी रोगके कारण शरीरमें निर्बलता आ जाने और रक्त कम बननेसे ऐसी स्थिति

आ सकती है। अधिक मनन और अधिक चिन्तन करनेसे रक्तमें उष्णता बढ़ जाती है और रक्त गाढ़ा हो जाता तथा अल्प परिमाणमें सञ्चार करता है। मानसिक विक्षोभसे भी रक्तकी कमी हो सकती है। रक्त की कमीसे भी हृद्रोग हो जाता है, हृदयका अवसाद बढ़ जाता है। रक्त सञ्चारकी उसकी क्षमता कम पड़ जाती है। शरीर फीका, शक्तिकी कमी, शिरोवेदना और उत्साहकी कमी दिखाई पड़ती है; अधि-वृक्कमें भी दोष आ जाता है, चुल्लका ग्रन्थियोंका रस निस्सरण व्यापार मन्द पड़ जाता है। धमनीके रोग प्रतिश्याय ज्वर, विसू-चिका, दन्त रोग, कण्ठशालूक, उपशालूक आदि व्याधियोंको इससे उत्तेजन मिलता है। इसमें प्रधान लक्षण भ्रम और मूर्छाका होना है, चित्त विभ्रम बना रहता है, सहसा खड़ा होने पर आंखोंके सामने अन्धेरा छा जाता है, मिजाज शक्की हो जाता है, संदिग्धता बढ़ जाती है, रक्त क्षीण होने पर—

रक्तेऽम्ल शिशिर प्रीति सिरा शैथिल्य रूक्षताः।

वाग्भटोक्त वचनके अनुसार रोगीको ठण्डी चीजें खानेकी इच्छा और ठण्डे स्थानमें रहना प्रिय लगता है; किन्तु अधिक शीत व्यवहारसे सर्दी प्रतिशाय हो जाता है। ठण्डे वायुके झोंकेसे तबियतमें प्रसन्नता बढ़ती है। यही नहीं सिरा और रक्तवाहिनियोंमें शिथिलता बढ़ जाती है। रक्तकी कमीसे शरीरका रङ्ग फीका पड़ जाता है; शरीर की रूक्षता बढ़ जाती है। ऐसे रोगीको नींद बहुत कम आती है। नींद न आनेसे उसकी परेशानी बढ़ जाती है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। हाथ पांव ठण्डे रहते हैं, शारीरिक उत्ताप भी घटा हुआ रहता है। नाड़ीकी गति भी धीमी रहती है और हृदयकी धड़कन घटी रहती है। थोड़े परिश्रमसे थकी आ जाती है। ऊंचे नीचे चढ़ने उतरने या कुछ शीघ्रतासे चलने पर हृदय जोर जोरसे धड़कने लगता है, ऐसा मालूम पड़ता है; मानो हृदय या कोई

पदार्थ गलेमें अटक गया है। ऐसी दशामें दिल दबा कर खड़े हो जाने या बैठ जानेकी इच्छा होती है। शरीरमें पित्त सम्बन्धी क्रिया भी शिथिल पड़ जाती है। वायुकी वृद्धिसे कफमें भी रूक्षता और खुश्की आ जाती है। सूखी खांसी भी हो सकती है। हृदयमें रहने वाला साधक पित्त क्षीण पड़ जाता है। डाक्टरोंके शब्दोंमें एड्रिनलीन की क्रिया मन्द पड़ जाती है। साथ ही कफ धर्मी क्रिया (एसीटीलकोलिन) भी असमर्थ पड़ जाती है, जिसके कारण सुषुम्ना, इडा तथा पिंगलाके कार्य भी शिथिलतासे चलते हैं। इसका असर पांचों पित्तों और पांचों श्लेष्माओं की क्रिया पर पड़ता है। बढ़ा हुआ रूक्ष वायु यकृतके कामको बिगाड़ देता है। शर्कराजन्य पदार्थोंका संवहन शरीरमें कम होता है, जिसके कारण चमड़ेमें ठण्डापन मालूम पड़ता है। शारीरिक उष्णता भी घटी रहती है। यही नहीं ब्रह्महृदय (वेंट्रिकल) में जो उष्णता साधक व्यवस्था होती है उसके केन्द्रों (हीटरेग्युलेटिङ्ग सेंटर) में अव्यवस्था आ जाती है। यद्यपि नीचैः विक्षेपकी व्याधि प्राण घातक नहीं होती तथापि पुरुषत्वका ह्रास, उत्साह और कृतित्व की न्यूनता शरीरको बेकाम कर देती है। अतएव इसकी चिकित्सा भी सावधानीके साथ होनी चाहिये।

रक्त विक्षेप की एक चौथी किन्तु रोग सूचक तीसरी अवस्था भी होती है। इसे स्वतन्त्र विक्षेप कहा जा सकता है। डाक्टर लोग इसे हाईपरपायेशिया ब्लडप्रेशर कहते हैं। इसमें विशेषता यह होती है कि वृक्कमें अर्थात मूत्रग्रन्थिमें कोई विकार नहीं होता। यही नहीं धमनियों में किसी प्रकारकी कठिनता या विकृति भी नहीं मालूम पड़ती। रोगी स्वस्थ हट्टा कट्टा मालूम पड़ता है। रक्तविक्षेपक यन्त्र में देखनेसे विक्षेप १८० या इससे अधिक होता है, यही परेशानीका कारण होता है। यदि प्लीहा अथवा उदरके अन्य किसी अवयवमें विकृति न हो तथा धमनी और वृक्क एवं हृदय विकार रहित हों तो इससे कोई

हानि नहीं होती। तथापि योग्य चिकित्सकसे शरीरकी परीक्षा करा लेनी चाहिये। यदि रक्तनलिका, यकृत, प्लीहा अथवा उदरमें किसी विकारके कारण ऐसी स्थिति हो तो उसका उपाय करना चाहिये। हो सकता है कि हिम्मतके साथ अधिक परिश्रम करनेसे या अधिक शराब पीनेसे अथवा अधिक धूम्र पानसे पित्त ग्रन्थिमें (एड्रिनल) क्षोभ होनेसे ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई हो। यह भी हो सकता है कि मज्जा तन्तुओं या अन्य तन्तुजालमें कोई विकृति होनेसे ऐसा होता हो। प्लीहा अथवा वृक्क की रक्त वाहिनियां तथा हृदय और वृक्कमें, उपवृक्क ग्रन्थिमें रोगके प्रादुर्भाव होने की पहचान धमनी काठिन्य होना है। डाक्टर लोग ब्लडप्रेशरके रोगमें 'एड्रीनल" का इञ्जेक्शन देते हैं। किन्तु ऐसी दशामें यदि इसका इञ्जेक्शन न दिया जाय तो रोग की वृद्धि होती है। इससे समझा जाता है कि यह पित्तग्रन्थिजन्य स्वतन्त्र ब्लडप्रेशर है।

धमनी काठिन्य—

बुढ़ापेमें धमनियोंकी कठिनता बढ़ जाती है। जिनकी धमनियोंमें कड़ापन नहीं आता वे दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकते हैं। यदि ३० वर्ष के युवाकी धमनियोंमें ६० वर्षके बूढ़ेकी सी कठोरता आ जाय तो समझना चाहिये कि रोगीमें कुछ पैतृक दोष हैं। जब धमनियोंका उपयोग योग्य रीतिसे नहीं हो सकता, आहार-विहार और मानसिक परिश्रमसे उन्हें क्षुभित किया जाता है तब भी असमयमें कठिनता आती है। विषदोष, मदिरा सेवन, सीसेके विषसे जो ब्लडप्रेशर होता है, उसमें भी शाखा प्रवाहमें प्रतिरोध होकर रक्त संवहन क्रियामें अव्यवस्था होती है। विषदोषसे रक्तकी स्वाभाविकता नष्ट होती है। जिससे तन्तु वाहनियोंमें उसका प्रवाह कठिनाईसे होता है; और रक्तचाप उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। चाय, काफी, मदिरा आदि उत्तेजक पदार्थोंके अति प्रयोगसे रक्तमें तरलता बढ़ जाती है, इससे

वह परिमाणमें अधिक हो जाता है। अतएव उसका भार या विक्षेप भी बढ़ जाता है। ऐसी अवस्थामें रक्तवाहिनियोंमें कठिनता बादमें आती है। जब शारीरिक धातुओं की समतोलपना (मेटाबोलिजम) में विकृति आती है, तब रक्तमें विष प्रभाव उत्पन्न होता है। धमनी काठिन्य होनेमें उपदंशके चट्टे, अधिक भोजन, अत्यन्त व्यस्त जीवन, व्यवसाय और कामवासनाकी अधिकता एवं मांस पेशियोंको अधिक परिश्रम देनेसे शाखागत रक्तमें विक्षेप कारणीभूत होता है। यदि धमनियोंमें कड़ापन आवे तो वृक्कमें भी कुछ दिन पश्चात् कड़ापन आ जाता है। इसी प्रकार यदि पहले वृक्कमें कड़ापन आवे तो कुछ दिनोंमें धमनियोंमें भी कड़ापन आ जाता है। धमनी काठिन्य पहले बड़ी धमनीमें होता है। इसके पश्चात् उसकी शाखागत सूक्ष्म धमनियां भी कड़ी पड़ जाती हैं। आंतों और हृदय की धमनियोंमें कठिनता साधारणतः नहीं होती। शायद ही कभी देखी जाती है। रक्तमें गांठ उपदंशके विषके प्रभावसे प्रायः महा धमनी के प्रारम्भिक भागमें तथा उसकी शाखाओंके छिद्र या मुख भागमें आती है।

सर्वाङ्ग व्यापिनी धमनियों की कठिनता होने पर केशवाहिनी धमनियोंमें भी कड़ापन आ जाता है, जिससे तन्तुजालमें शोथके साथ विकार वृद्धि हो जाती है। यह व्याधि प्रौढ़ और युवा लोगोंको होती है। विकार बढ़ते बढ़ते धमनियोंके अन्तर्पटमें कमी होती और पोलापन घटता जाता है। महाधमनीका मध्य भाग शोथके कारण मोटा हो जाता है। हृदयका आकार बढ़ने लगता है। ऐसी दशामें जो हृद्रोग होता है उसे डाक्टरीमें फाइब्रस मायो कार्डाइटिस कहते हैं। इसमें हृदय की पेशियोंमें शोथ हो जाता है। पेशियोंके तन्तु फैल जाते हैं। उनमें मवाद भी पड़ सकता है। अधिक शोथ होनेसे घाव भी हो सकता है। वह घाव हृत्पिण्डके तन्तुओंको विकृत

कर देता है। तन्तु विच्छिन्न होने पर रक्त स्रोतमें प्रवाहित होने लगते हैं। ऐसा विकार प्रायः हृदयके वाम भागमें होता है। जिसके साथ वृक्कमें भी कड़ापन आ जाता है, आकार वृद्धि होती है। उसमें कहीं कहीं खड्डे पड़ जाते हैं। चालीस पचास वर्षके बाद शरीरमें वायु वृद्धिके कारण स्नेहकी कमी होती है। रूखता बढ़ जाती है और चूने की जातिका पदार्थ बढ़ जाता है, जिससे धमनियोंमें कड़ापन और अकड़न बढ़ जाती है। यदि इस प्रकार की विकृति चालीस पचास वर्ष की उमरके पहले हो तो किसी रोगके परिणाम स्वरूप होगी। इस प्रकारके अकाल धमनी काठिन्य (सेनाइल आर्टरियो स्क्लेरोसिस) में बड़ी धमनयां विस्तृत हो जाती हैं और उनकी स्थिति बांकी (टेढ़ी) हो जाती है। उनकी दीवाल पतली होकर ऐंठ जाती है। हाथकी नाड़ी भी अकड़कर पोली लकड़ीके समान कड़ी पड़ जाती है। धमनियोंमें कहीं कहीं दाग पड़ जाते हैं, जिससे वहां सड़न भी हो सकती है। इस सड़े हुए भागके टुकड़े (थ्रोमवस) धमनी या सिराके संहवन मार्गमें यदि पैठ जावें तो रक्त संवहन कार्यमें बाधा पड़ती है और रक्तका दबाव बढ़ जाता है। इससे (थ्रोमवस) धमनी या सिराके संवहन कार्यमें बाधा पड़ती है। और रक्तका दबाव बढ़ जाता है जिस भागमें काफी रक्त नहीं पहुँचता है वहांका भाग निर्जीव और निचेष्ट होने लगता है। ऐसी अवस्थाको एलोपैथीमे ग्हाइटलेन कहते हैं। यदि इस प्रकारके टुकड़े मस्तिष्क की धमनियोंमें भर जाय तो पक्षाघात हो जाता है। अथवा रक्तस्राव होने लगता है। यदि हृदय की धमनीमें ये टुकड़े पहुँचें तो हृदय की चाल बन्द हो जाती है और हार्टफेल हो जाता है।

यदि उपदंशके कारण धमनी काठिन्य हो तो वह महा धमनीके बीचमें शोथ उत्पन्न होकर बढ़ता है। विशेषकर महाधमनीके मूलके छिद्रके पास धमनी शोथ होता है। कभी कभी थोड़े ही भागमें शोथ होता है। फेफड़ोंकी धमनियोंमें जो कड़ापन आता है वह कई रोगोंके

फल स्वरूप होता है। वात जन्य शुष्क कास-श्वासमें जब रक्त विक्षेप बढ़ता है तब फेफड़ेकी धमनी कड़ी पड़ जाती हैं। एक प्रकारके हृद्रोगमें (माइट्रलस्टेनोसिस) फुप्फुसमें रक्त संग्रह बढ़ जाता है। क्योंकि इसमें हृदयका माइट्रल द्वार संकुचित हो जाता है, और हृदय के वाम भागके दो खण्डोंके बीचका परदा (माइट्रल वल्व) का अवयव रूखा पड़ जाता है। जिससे वाम अलिन्दसे वाम निलयमें रक्तका प्रवाह यथोचित रूपसे नहीं हो पाता। हृदयमें कम्प मालूम पड़ता है। पहले हृदयाभिघात् शब्दके पूर्व कर्कश मर्मर शब्द सुना जाता है। कभी दूसरे शब्दके बाद भी एक प्रकारका मर्मर शब्द वर्तमान रहता है। ऐसा मर्मर शब्द द्विकपाटीय भागमें विशेष रहता है। इस रोगके आरम्भमें तो नाड़ीकी चाल साधारण रहती है ; किन्तु क्रमशः क्षीण पड़ती जाती है। थोड़े ही परिश्रमसे श्वासका चलना बढ़ जाता है। अतएव फुप्फुसमें रक्त संग्रह होने लगता है। रोगी बहुत कष्ट बोध करता है और कभी अकस्मात उसकी मृत्यु भी हो जाती है। प्रायः गठिया रोग वालोंमें ऐसी अवस्था उत्पन्न होती है। इसमें फेफड़ेकी शाखाएं फैल कर कड़ी पड़ जाती हैं। उनके पर्दे अशक्त हो जाते हैं। कभी कभी फेफड़ेके धमनी कोषमें अनेक ग्रन्थि हो जानेसे भी धमनीमें ऐंठन आ जाती है। कभी कभी उपदंशके रोगियोंके फेफड़ोंमें शोथ हो जाता है, जिससे श्वास लेनेमें कठिनाई होती है। चेहरेमें श्यामता आ जाती है और रक्तमें लाल कणोंकी वृद्धि हो जाती है, खांसीके साथ रक्त आने लगता है, हृदय बढ़ जाता है, हृदशूल भी होता है। ऐसी दशामें खाली धमनीमें ही नहीं तन्तुजाल और शिराओंमें भी कड़ापन आ जाता है। ज्यों ज्यों धमनियोंमें रक्त-चाप बढ़ता है त्यों त्यों धमनी काठिन्य शिराओं तक पहुँच जाता है। जब यकृतमें कठिनता और संकोच हो जाता है, तब सिराओंमें काठिन्य आ जाता है। कभी कभी तो धमनी काठिन्य न होने पर भी

शाखागत सिराओंमें अकड़न आ जाती है। अधिक कमजोरी होने पर जवान लोगोंकी रक्त नलिकाएं भी अकड़ कर कड़ी पड़ जाती हैं।

दोष विचार-

यदि दोष भेदानुसार विचार करें तो वातज रक्त विक्षेपमें शरीर में और विशेषकर जहां रक्त की रुकावट हो जहां रक्त धक्का मारता है, वहां शूल या पीड़ा होती है। सन्धियोंमें वेदना और हड्डियोंमें हड़फूटन होती है। शरीरमें तथा मस्तिष्कमें आक्षेपके से झटके लगते हैं। पक्षाघात और लँगड़ेपनका विकार भी वायु दोषके कारण होता है। जब धमनियोंमें कठिनता आ जाती है और रक्त संवहन में बाधा पड़ने लगती है, तब लँगड़ेपनका दोष आता है। धमनियों के कड़ेपनके कारण रक्त संहवनमें परिश्रम पड़नेसे आक्षेप होते हैं। क्योंकि जिस अङ्गमें आक्षेप होते हैं वहां यथेष्ट रक्त न पहुँचनेसे व्याकुलता होती है। कुपित वायु जिन धमनियोंमें संचार करता है वहां बारम्बार आक्षेप होते हैं। धमनियोंके मांस मय पर्देमें जो नाड़ी तन्तु होते हैं उनमें अनियमित झटके लगते रहनेके कारण रक्त संवहन रुकावटके साथ होता है। रक्तवाहिनियोंमें आक्षेप होने से उदर और हृदयमें भी उसका असर पड़ता है; क्योंकि वहांसे रुकावटके कारण ढकेला हुआ वायु हृदय और उदरमें भी जाकर वेदना उत्पन्न करता है। वायु प्रकोपसे सिराओंमें तनाव, शूल, स्पन्दन, तोद-चुभन, शोथ, रूक्षता, संकरापन (कार्श्न) श्यामता (साइनोसिस) धमनी सन्धि संकोच और शीतद्वेष होता है। रक्तके दबावसे धमनियोंमें तनाव होता है, यह तनाव उनमें रूक्षता आ जानेसे अधिक होता है, शंख और गलेकी धमनयोंमें फड़कन अधिक होती है। धमनी शोथके कारण थोड़ा चलने पर गोला चढ़ता है, रक्तकी कमी से पाण्डुता या श्यामता आती है। धमनी काठिन्यसे हड़फूटन या तोद होता है

ब्लडप्रेशरमें वात प्रधान तो रहता ही है; किन्तु जिसमें अन्य दोष पित्त भी उसका साथी होता है, उसमें वात योगवाही होनेके कारण पैत्तिक क्रियाको और भी उत्तेजित करते हुए शरीरमें दाह बढ़ा देता है, वेदनाकी अधिकता रहती है। मूर्च्छा आ जाया करती है। पसीना आता है, प्यास अधिक लगती है, नशा सा चढ़ा रहता है, चक्कर आते हैं, चेहरा ललाई लिये रहता है। धमनियां और सिराओंमें शोथकी अधिकता रहती है। उष्णताके कारण छोटी धमनियोंके फटने और नाक, आंख, कानसे रक्त आनेका भय रहता है।

यदि वातके साथ कफ भी हो तो कफका प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। शरीरमें जड़ता और भारीपन रहता है। उटने बैठने और कुछ कार्य करनेकी इच्छा नहीं होती, शरीरमें चिकनापन, और शून्यता मालूम पड़ती है। शरीरमें हलकी पीड़ा होती है।

यदि वात विकृतिके साथ रक्तकी विकृति विशेष हो तो उसे रक्तोल्वण रक्तविक्षेप कहेंगे। इसमें जो शोथ होता है उसमें पीड़ा अधिक होती है। शरीरमें चिमचिमाहट रहती है, शरीरमें खुजली और क्लेद की अधिक रहती है। इसमें स्निग्ध या रूक्ष चिकित्सासे लाभ नहीं होता।

द्वन्द्वज दोषका विचार भी किया जा सकता है अर्थात् जिन विकारोंमें वात पित्तज लक्षण मिलते हैं उसे वात पित्तज और जिसमें वातकफ लक्षण मिलें उसे वातकफज रक्तविक्षेप कहा जायगा। पित्त कफज विकार नहीं होता, क्योंकि वातके बिना विक्षेप नहीं होता। हां वातरक्तज भेद माना जा सकता है; किन्तु उसे मानने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि वातके द्वारा रक्तमें विकृति होने पर ही यह व्याधि होती है। हां त्रिदोषज रक्त विक्षेप होता है। जिस रक्तविक्षेपमें नींद न आवे, भोजनमें रुचि न हो, श्वास फूले, मांस-

पेशी अथवा धमनी और शिराओंमें शोथके बाद सङ्कोचन आरम्भ हो, शिरोवेदना अनेक प्रकारकी हो, मस्तिष्कमें ऐसा मालूम पड़े मानों मद या नशेका प्रभाव है, कभी कभी वान्ति हो, ज्वर भी मालूम पड़े, बेहोशी आ जाय, शरीरमें ददोरे पड़ें, हिचकी आवें, शरीरमें रक्त हीनता हो, चक्कर अधिक आवें, बिना परिश्रमके थकी मालूम पड़े, दाह हो और हृदय, वृक्क, मस्तिष्क, प्लीहामें रक्त एकत्र होकर गाढ़ा हो, ऐसे विकारको त्रिदोषज रक्त विक्षेप समझना चाहिये।

उपसर्ग रूपी रक्तविक्षेप—

आयुर्वेदाचार्य रक्त विक्षेप को स्वतन्त्र रोग नहीं मानते थे; वात प्रकोपके कारण अन्य रोगोंके उपसर्ग रूपमें इसे समझते थे। इस प्रकार दूसरे रोगोंके उपद्रवमें यह लाक्षणिक व्याधि समझी जाती थी। ऊपरके विवेचनसे यह समझमें आगया होगा कि जब वृक्क, आंत, यकृत, प्लीहा, हृदय और फुफ्फुसकी रक्तवाहिनी धमनी और कभी-कभी सिरा भी कड़ी पड़ जाती है तब रक्त सञ्चारमें बाधा पड़ती है और रक्त विक्षेप बढ़ जाता या घट जाता है। उस अवस्थामें उपसर्ग रूप जो व्याधि होती है उसे हाई ब्लडप्रेशर या लोब्लडप्रेशर कहा जाता है। उपदंशके उपसर्गमें रक्तविक्षेप होनेका उल्लेख ऊपर हुआ है। हृद्रोगके उपसर्ग में भी ब्लडप्रेशर होता ही है। ज्ञान तन्तुओंके क्षोभसे भी इसकी उत्पत्ति होती है। उपवृक्कके स्राव बढ़ने पर उपसर्ग रूपमें यह हो जाता है। उत्तेजक और विषाक्त पदार्थोंके सेवनसे रक्त सञ्चारमें जो विकृति आती है उसके कारण भी ब्लडप्रेशर होता है। विशेषकर हृद्रोगकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंके उपद्रव रूपमें यह अधिक होता है। मस्तिष्क विकारसे पक्षाघात और पक्षाघातसे ब्लडप्रेशर होता है। अधिक भोजन करने वालों और बद्धकोष्ट वालोंको महास्रोत (अबडोमिनल

आर्टरी) में जब कड़ापन बढ़ जाता है तब उसके उपसर्ग रूपमें ब्लडप्रेशर होता है। रक्तवाहिनयोंके आक्षेपकी अवस्थामें ब्लडप्रेशर होनेका भय रहता है। शाखागत धमनियोके शोथसे उनके पोलेपनमें जब कमी आ जाती है या धमनियोंके रक्तमें गांठ पड़ जानेसे जब रक्त संवहन की बाधा से पक्षाघात के लक्षण होते हैं और इन लक्षणोंके कारण शाखाओंकी मृतप्राय अवस्था (गेंग्रीन आफ एक्स्ट्रीमिटी) होती है तब ब्लडप्रेशर होता है। पैर की शिराओं की कठिनताके फलस्वरूप भी ब्लडप्रेशर होता ही है। इस प्रकार सन्देह होने लगता है कि ब्लडप्रेशर कोई स्वतन्त्र रोग नहीं वरन् अन्य रोगों का उपसर्ग या उपद्रव रूप व्याधि है। किन्तु जब आजकल यह अधिकतासे होने लगा है तब उसका स्वतन्त्र विवेचन होना भी आवश्यक है।

इसी प्रकार शिरो रोगमें भी ब्लडप्रेशरके लक्षण मिलते हैं। चरकमें जो ५ प्रकारके शिरो रोग कहे गये हैं उनमें मस्तकमें बहुत जोरका दर्द, शङ्खदेश की धमनियोंमें फड़फड़ाहट और गर्दन टूटती सी मालूम पड़ती है। दोनों भौहोंके बीचका भाग तप जाता है, कानोंमें सनसनाहट होती और आंखें निकली सी मालूम पड़ती हैं। आंखके पीछे रेटिनाके पर्दे की धमनियां कड़ी पड़ जाती हैं। ब्लड-प्रेशरमें भी ऐसे ही लक्षण होते हैं। ब्लडप्रेशरके समान शिरोरोग में भी शिर में चक्कर होता है, शिर की शिराओंमें फड़कन मालूम पड़ती है, शिर जकड़ा सा रहता है, इस प्रकार शिरो रोगके कारण भी ब्लड-प्रेशरके कारणोंसे समानता रखते हैं। वेगों को रोकना, दिनमें सोना, रातमें जागना, नशेका सेवन, जोरसे बोलना, सामनेके वायु वेगको सहन करना, अत्यन्त मैथुन, भारी और खट्ट पदार्थोंका सेवन आदि कारणोंसे शिरोभागमें भ्रमण करने वाला रक्त बिगड़ता और आधे या समूचे शिरमें वेदना उत्पन्न करता है। तब दूषित रक्त

वेगसे भ्रमण करता है, अतः सिराओंमें कड़ापन पैदा होता है। इन कारणोंसे नाड़ी तन्त्रमें कमजोरी हो जानेसे पोषणके अभावसे धमनियोंमें कड़ापन आता है। ऐसी दशामें जिसे डाक्टर लोग न्यूरेलजिया कहते हैं, उस श्रेणीका शिरः शूल होता है, इसमें भी वायु विकृतिके लक्षण उत्पन्न होते हैं। शिरोगत धमनियोंमें उच्च भाषण, बहु भाषण, तीक्ष्ण जलपान, भारवहन, शोक, भय, त्रास, अधिक मार्ग भ्रमण, रात्रि जागरण, शीतवायु, अत्यन्त मैथुन, प्रसङ्ग वेगोंको रोकने आदि कारणोंसे वायु कुपित होकर प्रवेश करता है और शङ्ख देशमें तथा भृकुटी और गर्दनमें पीड़ा उत्पन्न करता है। धमनियोंका संकोच, ऐंठन और कड़ापन भी उक्त कारणोंसे होता रहता है। ऐसी दशा दशामें :मालूम पड़ता है मानों आंखें निकली पड़ती हैं। शिर, गर्दन और पैरोंमें नीम की निबोलीके समान छोटी ग्रन्थियां होती हैं, जिनके कारण रक्तका विषाक्त अंश नष्ट होता रहता है। ये ग्रन्थियां शरीरके पोषण रस को भी शुद्ध करती हैं। ऐसा रस रसायनियों (लिंफवेसल्स) द्वारा बहता है और उसी रससे रक्त बनता है, यही रसायनियां शरीरमें पोषक रस पहुँचाती हैं। उसकी लालाग्रन्थियां तथा आमाशय और आंत की ग्रन्थियाँ भी पाचक रस पैदाकर पाचनके अभावसे बनने वाले विषको रोकती हैं। आन्त्रक्षय और टाईफाइडमें इन्हीं गांठोंमे शोथ होकर कठिनता हो जाती है। इस कार्यमें बाधा पड़नेसे शिरोरोग और ब्लडप्रेशर होता है। इस प्रकार ब्लडप्रेशरसे शिरोरोगमें भी साम्य है, किन्तु इस कारणसे शिरो रोग ब्लडप्रेशर नहीं कहलावेगा। वह स्वतन्त्र ही समझा जायगा।

मुख और नाकसे हाई ब्लडप्रेशरमें रक्त जाता है और रक्त पित्तमें भी ऐसा रक्त जाता है, किन्तु रक्तपित्तको ब्लडप्रेशर नहीं कहा जा सकता; क्योंकि रक्त जाना ब्लडप्रेशरका अनिवार्य लक्षण नहीं है।

हृद्रोगके बाद वात रक्त रोग ऐसा है जिसमें ब्लडप्रेशरके लक्षण प्रायः अधिक होते हैं इसलिये कुछ लोगों का तो यह ख्याल है कि वातरक्त और ब्लडप्रेशर एक ही रोग है। महाराष्ट्र प्रांतके कुछ वैद्य वात रक्त को कुष्ठ (लिप्रेसी) समझते हैं और गुजरातके कुछ वैद्य वात रक्त को गठिया या आमवात (गाउट) मानते हैं; किन्तु यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि वात रक्त रक्त स्थान का रोग है और गाउट धातुसाम्य न होनेके कारण (मेटाबौलिजम) होता है। रक्तनालिओं से इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। वातरक्तमें हाईब्लडप्रेशर आरम्भसे ही रहता है; किन्तु गाउटमें जब धातु साम्यके अभावसे रक्तसे नलिकाओंमें चूना सा जमता है तब हाई ब्लडप्रेशर होता है। वातरक्त और ब्लडप्रेशर दोनोंमें निद्रा और आराम करना आवश्यक है किन्तु गाउटमें व्यायाम आवश्यक है और बैठे रहना हानिकारक है। वातरक्त और ब्लडप्रेशरमें शीतोपचार और शीतल जलवायुमें रहना लाभदायक है; किन्तु गाउटमें उष्णोपचार और उष्णवातावरणमें रहना लाभदायक होता है। अतः वातरक्त न तो कुष्ठ है और न गाउट। गाउटका मेल आमवातसे खाता है। वातरक्त और ब्लडप्रेशरमें साम्य अधिक है। इसलिये हम चाहते हैं कि इस सम्बन्धमें थोड़ा अलग विवेचन कर दें।

वातरक्त और ब्लडप्रेशर—

जिन कारणोंसे वात रक्त होता है, प्रायः उन्हीं कारणोंसे ब्लडप्रेशर भी होता है। अधिक लवणके सेवनसे रक्त पतला पड़ जाता है जिससे ब्लडप्रेशर और वातरक्त होते हैं। कटु और क्षार पदार्थ भी रक्तकी उल्बणता बढ़ाते हैं। स्निग्ध पदार्थोंसे भी रक्तकी उष्णता बढ़ती है। अजीर्णकी दशामें और भी भोजन करनेसे आमाशय और आंतों पर अधिक बोझा पड़ता है, और दोष भी उससे उत्पन्न

होता है जिससे रक्त दूषित होता है। सड़े और सूखे मांस मछली और अनूप देशके जीवोंका मांस-जलजीवोंका मांस खानेसे भी रक्त की उल्वणता बढ़ती है। पीना (तेल निकालने पर बची हुई खली) मूली, कुलथी, उड़द, चौरा, शाक, मांस, ऊख, दही, गुड़, कांजी, सिरका, मद्य, अचार, मट्ठा, आसव, तेज मदिरा विरुद्धाहार, अध्यशन, क्रोध (क्रोधसे इडा नाड़ियोंका क्षोभ बढ़ता है) दिनको सोना रातमें जागना आदि वात रक्त उत्पन्न करने वाले कारण हैं। जो सुकुमार प्रकृति हैं, जिनके नर्वससिस्टम कमजोर हैं और मैदे तथा रसकी वस्तुएं खानेसे जिनमें चरबी बढ़ रही है, जिनका शरीर और रक्त दूषित है और अभिघात (चोट) लगनेसे वात रक्त होता है। चरकमें लिखा है—

> लवणाम्ल कटुक्षार स्निग्धोष्णाजीर्ण भोजनैः
> क्लिन्न शुष्काम्बुजानूप मांस पिण्याक मूलकैः
> कुलित्थ माष निष्पाव शाकादि पललेक्षुभिः
> दध्यारनाल सौवीर शुक्त तक्र सुरासवैः
> विरुद्धयाध्यशन क्रोध दिवास्वाप प्रजागरैः
> प्रायशः सुकुमाराणां पिष्टान्न रस भोजिनाम्।
> अभिघातादशुद्धया वा प्रदुष्टे शोणिते नृणाम्॥

इन वातरक्त प्रकोपकारी कारणोंसे रक्त प्रकुपित होता है अतएव ऐसे ही कारणोंसे ब्लडप्रेशर भी होता है। जिसके शरीरमें मेद की अधिकता है, जिनके शरीरमें रक्तकी अधिकता है, (प्लेथोरिक) जो सुखी जीव हैं, जो फीके चेहरे और चिन्तातुर स्वभाव वाले हैं, उन्हें ब्लडप्रेशर होता है। सुश्रुतके कथनानुसार "प्रायशः सुकुमाराणां सुखीनां चापि वात रक्त प्रकुप्यति" वचनके अनुसार ऐसे लोगोंको वातरक्त भी होता है।

वातरक्तकी सम्प्राप्तिमें बतलाया गया है कि कषाय, कटु, तिक्त पदार्थोंके सेवनसे, अल्प और रूक्ष आहारके सेवनसे, भोजन न करनेसे, हाथी घोड़ेकी सवारीमें रहते हुए पानी पीनेसे, अधिक खेल कूद, दौड़ धूप, जल क्रीड़ा, पोलो घुड़दौड़ करनेसे, लंघनसे, अधिक स्त्री सेवनसे, वेगोंको रोकनेसे पहिले वायु बढ़कर प्रकुपित होता है। रक्त भी उल्वण होकर बढ़ता और वायुके मार्गको रोकता है, जिससे वायु प्रकुपित होकर रक्तको दूषित करता है। इस प्रकार वात और रक्तके दूषित होनेसे जो रोग होता है उसे वात रक्त कहते हैं। प्राय: यही सम्प्राप्ति ब्लडप्रेशर की है। रक्तविक्षेपके कारणोंसे शरीरमें रक्त बढ़ता है, इधर वायु भी बढ़ता और विकृत होता है। रक्तका दबाव बढ़ता है। ब्लडप्रेशरके पहिले दर्जेमें रक्त की वृद्धि और रक्तका चाप बढ़ता है, इस समय धमनियोंमें कड़ापन नहीं होता। गर्मीमें रक्तका चाप बढ़ता और सर्दीमें घटता है। रोगी साधारणत: अच्छा रहता है और उसे रोगका ध्यान भी नहीं होता है। मस्तिष्ककी ओर रक्तका दबाव अवश्य अधिक रहता है। इस स्थितिको डाक्टरीमें 'इशेंशियल हाईपरटेंशल' कहते हैं। ब्लडप्रेशरके दूसरे दर्जेमें अधिक रक्तका जो प्रवाह मस्तिष्क की ओर जाता है उससे वात संस्थान (नर्वससिस्टम) के कार्यमें बाधा पड़ती है। इससे नर्वससिस्टमके कोमल भागको अधिक उत्तजना (इरिटेशन) प्राप्त होती है। यह उत्तेजना रक्तवह नाड़ीं यन्त्र (वाजोमीटर नर्वस-सिस्टम) और उनके केन्द्रोंमें होती है और इस उत्तेजनके कारण दवाब फिर पीछेको धक्का देता है। अर्थात् रक्त की वृद्धि और अधिक परिमाणके रक्तके दवाबको रक्तवह नाड़ी यन्त्रके उत्तेजनसे जो तीव्रता प्राप्त होती है, उससे इस दूसरे दर्जे की स्थिति बनती है। बिजलीके प्रवाहसे भी वाजोमीटर केन्द्र उत्तेजित होते हैं। ऐसी दशामें शाखा-गत छोटी धमनियोंमें संकोच और रक्तचाप बढ़ता है। आगे संकोच

से बढ़कर उनमें कठिनता और वक्रता आती है। नर्वससिस्टमका वाजोमोटर सेंटर रक्त नलिकाओंमें रक्तवहन कराता है। यह मस्तिष्कके चौथे वेंट्रिकल (ब्रह्महृदय) में अवस्थित है। यह काम वाजोमोटर नर्वस तन्तुओंके द्वारा सम्पादित होता है। शाखागत धमनियोंमें हाथ पांव की तथा दूर तक की फैली हुई धमनियां शामिल हैं, यही नहीं प्लीहा और वृक्क की धमनियां भी इसीके अन्तर्गत हैं। इस क्रियाका प्रेरण व्यान वायुके द्वारा होता है। शाखागत धमनियों के संकोचसे रक्त संवहनमें जो बाधा पड़ती है उसे डाक्टरीमें पेरीफेरल-रेजीस्टेंस कहते हैं। लगातार सङ्कोचके कारण धमनियोंमें ऐंठन और कड़ापन आ जाता है जिससे रक्त संचारका काम सुविधानुसार नहीं हो पाता। यकृत और प्लीहाकी धमनियोंमें भी संकोच और काठिन्य होना स्वाभाविक है; क्योंकि चरकके विमान स्थानके—'शोणित वहानां स्रोतसां यकृन्मूलं प्लीहा च' के वचनानुसार यकृत और प्लीहा रक्तवह स्रोतसोंके मूल हैं। मूल स्थानमें बिगाड़ होनेसे सारे शरीर की धमनियोंमें संकोच और कड़ापन आ जाता है। ब्लडप्रेशरके तीसरे दर्जेमें वायुके प्रकोपसे हृदय की वृद्धि (हाईपर ट्रोफी आफ हार्ट) होती है। इस वृद्धिके कारण हृदय की चौड़ाई बढ़ जाती है; क्योंकि 'संकोच विकास धर्मोवायुः' के अनुसार संकोच और विकास करना वायुका धर्म है। इस प्रकार बढ़ा हुआ रक्त संवेदनात्मक नाड़ी तन्त्र (सिम्पेथेटिक नर्वससिस्टम) को उत्तेजित कर पित्त प्रधान स्राव (एड्रीनलीन) बढ़ा देता है। यह रोगमें एक उपद्रव की वृद्धि है। इसी प्रकार बढ़े रक्तके कारण वात रक्त भी होता है। आमवात प्रधान रोगियोंके रक्तमें पार्थिव पदार्थ (सालिड मेटर) अधिक रहते हैं। मेद वाले रोगियोंमें कफ प्रधान प्रकृति रहती है। मस्तिष्कके ब्रह्मवारि रूपी कफके दबावसे भी वात रक्त होता है अर्थात् ब्लडप्रेशर और वातरक्त दोनोंमें वायुकी विकृति प्रधान होती है।

दोनोंमें विकृत वायु बचे हुए रक्तको दूषित और दबावके साथ प्रवाहित करता है। तीसरे दर्जे की बढ़ी हुई उपद्रव पूर्ण दशामें रक्त के दबावसे नर्वस सिस्टममें अधिक बाधा पड़ती है; जिससे विकार मस्तिष्क और वृक्कमें प्रकट होते हैं। रक्तविकृति स्पष्ट दीखने योग्य हो जाती है। ऐसी दशामें रक्तमें गांठ आ जाती है और मस्तिष्कको यथेष्ट रक्त न मिलनेसे पक्षाघात की दशा उपस्थित होती है। हाथ पांव की धमनियोंमें आक्षेप होते हैं, जिससे वेदना बढ़ जाती है। ऐसे समयमें हृदयके किसी भागके सड़ने या हृदयके फटनेका भय रहता है। हृदय और मस्तिष्कमें रक्त चढ़ जाने या मूर्छा होने का भी अन्देशा रहता है। रक्तचाप बढ़नेसे मस्तिष्कगत रक्तसंवहन केन्द्र और वायु संवहन केन्द्र उत्तेजित हो जाते हैं, जिससे हाथ पैर की सूक्ष्म धमनियां संकुचित हो जाती हैं। रक्तसंवहन रुकावटके साथ होता है, सूक्ष्म धमनियोंका पोला भाग सकरा पड़ जाता है और उनमें कठिन तन्तुओंकी अधिकता हो जाती है। कड़ापन बढ़नेसे शरीरके सब भागोंमें रक्त नहीं पहुँच पाता।

यह सम्प्राप्ति वातरक्तसे मिलती जुलती है। वातरक्त का प्रथम आक्रमण स्थान दोनों हाथ पैर, अङ्गुलियां और अङ्गुलियोंकी सन्धि होती है। इसके बाद रोगका प्रभाव शरीर व्यापी है।

"सौक्ष्म्यात् सर्वसरत्वाच्च देहं गच्छन् शिरापनैः।
पर्वस्वभिहत क्षुब्ध वक्रत्वादवतिष्ठते ॥"

वचनके अनुसार रक्त सूक्ष्म प्रवाही है। सिराओंके द्वारा शरीर में भ्रमण करता है। वह फिरता हुआ रक्त जब क्षुब्ध होता है तब परिमाणमें बढ़ जाता है, अतएव गतिमें भी बढ़ जाता है। तब शाखाओंसे "अभिहत" ढकेला जाता है। इस बलात्कारसे धमनियोंमें बक्रता आती है, और "वक्रत्वात्" सिरा धमनियोंके वक्र होनेसे उनमें

कठिनता, शोथ और संकोच आ जानेसे विकृति बढ़ती है, वे टेढ़ी पड़ जाती हैं और आक्षेप युक्त हो जाती हैं। इस रुकावटके कारण वात-रक्त होता है। यही नहीं ब्लडप्रेशरमें रक्तमें गांठ पड़ जाती हैं वैसी गांठ वातरक्तमें भी पड़ती हैं—

अतिप्रवृत्ति संगो वा सिराणां ग्रन्थयोऽपि वा।
विमार्ग गमनं वापि स्रोतस्थं दुष्टि लक्षणम् ॥

स्रोतस—धमनियोंके दूषित होनेसे रक्त धातु जोरसे संवहन करता है और नलिकाके बिगाड़से रुक कर भी प्रवाह होता है। सिराओंमें गांठ पड़ जानेसे रक्तका धक्का लगता है, वह विमार्गगामी हो जाता है। अति प्रवृत्तिसे धमनी काठिन्य होता है; और रक्त नलिकाओंका पोलापन घटनेसे रक्त संवहन रुकावटके साथ होता है। जहां रुकावट होती है वहां रोगोत्पत्ति होती है। यदि रक्तमें पित्त की प्रधानता हो तो शरीरमें पसीना, दाह और मूर्च्छा की शिकायत होती है, कफका असर हो तो शरीरमें भारीपन, जड़ता आदि विकार होते हैं। पित्त का असर सिम्पेथेटिक नाड़ी तन्तुओंमें और कफका पैरासिम्पेथेटिक नाड़ी तन्तुओंमें होता है। मगर आमवातके विकारमें रक्तमें पार्थिव पदार्थ की अधिकता रहती है। चर्बी वाले रोगियोंमें कफ की विशेषता होती है, मस्तिष्कमें स्थित ब्रह्मरन्ध्र रूपी कफकी विकृतिसे भी ब्लड-प्रेशर और वातरक्त दोनों होते हैं।

रक्त विक्षेप स्वतन्त्र रोग है—

इस प्रकार वातरक्त और रक्तविक्षेप दोनोंमें दोष वायु और दूष्य रक्त रहता है। दोनोंमें रक्त संचापसे नाड़ी संस्थान और मस्तिष्क तथा वृक्कमें विकृति होती है। रोग लक्षण बढ़ने पर दोनों में रक्त विकृति होती है। रक्तमें गांठ दोनोंमें आती है। मस्तिष्कमें रक्ताभाव होनेसे पक्षाघात दोनोंमें हो सकता है। हाथ पैरकी

धमनियोंमें आक्षेप दोनोंमें होते हैं। इस प्रकारके लक्षण बहुत मिलने पर भी वातरक्त और रक्तविक्षेपमें कुछ लक्षणोंकी भिन्नता ऐसी होती है जिससे दोनोंमें पृथकता भी स्पष्ट होती है। वातरक्तमें विकार का स्पष्टीकरण हाथ पैर और भृकुटीके पास बाहरी भागमें होता है। रक्तविक्षेपमें ऐसे बाह्य लक्षण प्रकट होना आवश्यक नहीं है। उवल्ण दोषका प्रभाव रक्तविक्षेपमें व त सस्थानमें पड़ना अनिवाय है। वातरक्तमें बाह्यक्षत होते हैं, जिससे इसकी गणना कोई वैद्य कुष्ठके समान करने लगते हैं। रक्तविक्षेपमें ऐसे बाह्यक्षत होना आवश्यक नहीं है। वातरक्तके समान रक्तविक्षेपमें जानु देशमें पिडिका होना आवश्यक नहीं है रक्तविक्षेपमें चमड़ेमें शून्यता (सुनबहरी) होना भी वातरक्तके समान अनिवार्य नहीं है। वातरक्त रोगी जरा भी आग की चिनगारी छूले तो फफाले पड़ जायँगे और वातरक्त रोगी खुले पैर कंकरीली भूमि पर नहीं चल सकता; किन्तु रक्तविक्षेप वाले रोगी को यह वाधा विशेष कष्ट दायक नहीं होगी। रक्त विक्षेपमें उच्च-विक्षेप और निम्न विक्षेप दो जो भेद होते हैं, वह रक्तके चाप की अधिकता और न्यूनता के द्योतक होते हैं। किन्तु वातरक्तमें आचार्य चरकके मतानुसार—

उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं तत्प्रचक्षते।
त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानगम्भीरं त्वन्तरावतम् ॥

वह जो भेद बतलाया गया है वह रक्त संचापका द्योतक नहीं; बल्कि रोग की गम्भीरता या उथलेपनका द्योतक है। जब तक बीमारीका प्रभाव ऊपरी चमड़ोंमें और मांसमें रहता है तब तक उसे उत्तान कहते हैं और जब विकार गहरे चमड़े और मांसमेंसे बढ़ कर अन्तराश्रित होते हैं, हृदय, वृक्क, मस्तिष्क और यकृत तथा प्लीहा में पहुँचते हैं तब उसे गम्भीर कहते हैं। यह उच्च विक्षेप और निम्न-

विक्षेपसे भिन्न होता है। कुष्ठके समान वातरक्तमें अङ्ग फूटते और गलते हैं। ऐसा रक्त विक्षेपमें साधारणत: नहीं होता। अतएव कुछ समानता होते हुए भी वातरक्त और रक्तविक्षेप अलग अलग रोग हैं।

यद्यपि रक्तविक्षेप अन्य रोगोंमें उपद्रव रूपसे भी मिलता है और लक्षणात्मक है, तथापि उसकी स्वतन्त्र सत्ता भी माननी ही पड़ती है। खांसी, यद्यपि प्रतिश्याय, ज्वर, और क्षयमें उपद्रव रूपसे आती है तो भी वह स्वतन्त्र व्याधि तो है ही; श्वास, उदर और शोथ रोग भी तो उपद्रव रूप होनेके साथ ही स्वतन्त्र भी हैं। इसी तरह रक्तविक्षेपको भी स्वतन्त्र व्याधि मानना चाहिये। पहले लोग संयमशील होते थे, यह व्याधि अधिकतासे नहीं होती थी; इसलिये वातरोगके अन्तर्गत साधारण रूपसे रक्तविक्षेप कहकर इसे सम्बोधन किया गया। किन्तु अब यह व्याधि अधिक दिखने लगी है और भिन्न रोगोंके उपद्रवके अतिरिक्त स्वतन्त्र भी होती है। जो रोग किसी किसी रोगके कारणीभूत होकर प्रकट होते हैं और कुछ दिन रह कर शांत हो जाते या बने रहते हैं, उनकी भी चिकित्सा करनी ही पड़ती है। इसीलिये हमने इनका इतना विवेचन किया है, जिससे वैद्य लोग इसका दिग्दर्शनकर चिकित्सामें सफलता लाभ करें।

साध्यासाध्यत्व--

इस रोगका साध्यासाध्यत्व धमनियोंकी परिस्थिति पर निर्भर करता है। धमनियोंकी कठिनता, वक्रता और सकरापन बढ़ जानेसे रोग असाध्य होनेकी सम्भावना रहती है। इसी प्रकार हृदयका अवसाद बढ़ना खतरेसे खाली नहीं रहता। हृदयका विस्तार बढ़ जानेसे भी उसके फटनेका भय रहता है। मस्तिष्कमें अधिक रक्त सञ्चय होनेसे रक्तवाहिनी फटनेका भय रहता है। इससे रक्तस्राव होकर मृत्यु होनेका भी भय रहता है। पक्षाघात भी रक्तका पोषण न मिलनेसे होता है, यदि वृक्कमें इतना विकृति हो जाय कि वह अपना

कर्तव्य पूरा न कर सके। वृक्क सङ्कोच अधिक होनेसे मूत्रमें कमी होती है। मूत्रके साथ दोष बाहर न निकलनेसे शरीरमें विष सञ्चार होता है, अतएव रोग की जटिलता भी बढ़ती है। आंत और आमाशयमें कठिन पीड़ा होनेसे वान्तिका उपद्रव होनेसे भी रोग की जटिलता सूचित होती है। रक्तमें गांठ आ जाना भी असाध्यका लक्षण है। एक दोष वाला रक्तविक्षेप साध्य होता है। चाहे अकेला रक्तका परिमाण बढ़ गया हो अथवा पित्तके एड्रीनलका स्राव बढ़ा हो, वह सरलतासे अच्छा किया जा सकता है। द्वन्द्वज विकार यदि नया हो तो वह भी रोका जा सकता है। रक्तकी वृद्धि और धमनी-काठिन्य मौजूद हो तो भी हृदय और वृक्कको तथा मस्तिष्कको दूषित होनेसे बचाया जा सकता है। त्रिदोषज व्याधि असाध्य है। क्योंकि उसमें सभी अवयवोंमें विकारका असर पहुँच जाता है। यदि नींद न आती हो, भोजनमें रुचि न हो, श्वास फूलता हो, मांस पेशी और सिराओंमें सड़न पैदा हो गयी हो, मूर्च्छा आती हो, मस्तिष्कमें मदका सा असर रहता हो, वान्ति होती हो, ज्वर आता हो, बेहोशी रहती हो, कपकपी और हिचकी तथा रक्ताल्पता होने पर रोग कष्टसाध्य होता है। बारम्बार चक्कर आवें, बिना परिश्रम थकी लगे, शरीरमें दाह, हृदय, वृक्क, मस्तिष्क, यकृत, प्लीहा आदि मर्म स्थानोंमें रक्त स्राव न हो तो यह उपद्रव युक्त समझा जाता है और कष्टसाध्य होता है। किन्तु यदि ऊपरकेसे उपद्रव हों और साथ ही बेहोशी रहती हो तो रक्तविक्षेप असाध्य होता है। यदि रक्तस्राव होता हो सिरा और धमनियोंका सङ्कोच अधिक हो गया हो, ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां अपना कार्य करनेमें असमर्थ हो गयी हों अथवा विपरीत कार्य करती हों तो भी रोग असाध्य होता है।

चिकित्सा क्रम—

रक्तविक्षेप या ब्लडप्रेशर की चिकित्सा करने वालोंको पहिले यह

निश्चय कर लेना चाहिये कि रोग यथार्थमें ब्लडप्रेशरका है या नहीं। अनेक रोगोंके उपसर्ग रक्तविक्षेपके समान होते हैं। उचित निश्चय न होनेसे रोगकी समुचित चिकित्सा नहीं नहीं हो पावेगी; बल्कि कभी कभी हानि होने की सम्भावना हो सकती है। चिकित्सा आरम्भ करनेके पहिले रोगके कारणोंका पता लगाना चाहिये, क्योंकि निदानके विपरीत चिकित्सा करनेमें उसकी नितान्त आवश्यकता पड़ती है। जब तक रोगोत्पत्तिके कारणोंका परिहार न किया जायगा तब तक रोगका सिलसिला बन्द नहीं होगा। दांतोंकी परीक्षा करायी जाय। यदि दांत सड़ गये हों और हिलते हों तो ऐसे दांतोंका उखड़वा देना ही अच्छा है। यदि दांतोंसे मवाद जाता हो तो दन्त चिकित्सक की सलाहके उसका उपाय करना चाहिये। यदि गलेमें गांठ हो तो कांच नार गुग्गुल आदिके प्रयोगसे उसे दूर करे। रोगीको रोगकी किसी भयङ्करताका विवरण विस्तारसे बताना आवश्यक नहीं है; अन्यथा मानसिक प्रभावसे वह घबड़ा जायगा। पहली ही बार छूटते ही रोगी को रोगका नाम भी बताना अधिक बुद्धिमानी नहीं है। बारम्बार रक्त-विक्षेप की यन्त्र द्वारा परीक्षा लेनेसे भी रोगी पर बुरा असर पड़ता है। यदि रोगीका वजन अधिक हो तो आहार घटाकर उसका वजन कम करनेका प्रयत्न करे। आहार द्रव्योंमें वस्तुओंकी अधिकता न हो, मांस-घटक द्रव्य और पिष्टमय पदार्थ बहुत घटा दें। पेशाब खूब साफ और अधिकताके साथ होता रहे, स्नान नित्य कराया जाय, जिससे चमड़ा स्वच्छ रहे और यथावश्यक पसीना निकलता रहे।

यदि अनिद्राका उपद्रव न हो तो हठात् रक्तचाप कम करनेका प्रयत्न न करे क्योंकि वृक्क विकार और मस्तिष्कगत धमनियोंकी कठोरतामें रक्त की पूर्ति करनेके लिये प्रकृति रक्तचाप बढ़ाकर स्वास्थ्य साम्य लानेका प्रयत्न करती है। ऐसी दशामें यदि हठात् रक्तचाप घटानेका प्रयत्न किया जायगा तो शरीरमें क्षीणता बढ़ेगी, पेशाबके

द्वारा विषाक्त अंश बाहर न हो पावेंगे और मस्तिष्कगत धमनियोंमें रक्तकी गांठ बननेका भय रहेगा। रोगीको आराम करने दे; किन्तु एक दम काम बन्द न करावे, नहीं तो निम्न विक्षेप होनेका भय रहता है। काम उतना ही किया जाय जिसमें थकी न लगे। निद्रामें सहायता पहुँचानेके लिये और पाचन शक्ति ठीक रखनेके लिये कुछ द्राक्षासव और सारस्वतारिष्ट दिया जा सकता है। पाखाना साफ होता रहे इसके लिये कभी कभी बस्ति दे अथवा सनाय, सौंफ गंधक, मुलेठी और मिश्रीका चूर्ण सप्ताहमें एक बार रातमें दूध या गरम पानीके साथ दिया करे।

यदि रक्त की अधिक वृद्धि हो गयी हो और रक्तके दबावसे हृदय बन्द होने (हार्ट फेल) का भय हो अथवा मस्तिष्क पर रक्तका दबाव बढ़नेका भय हो तो फस्द खोलकर रक्तमोक्षण करावे। आवश्यकतानुसार आध सेर तक और अधिकसे अधिक एक सेर तक रक्त निकलवावे। जब जब आवश्यकता हो रक्तमोक्षण कराया जाय। वृद्ध मनुष्योंके रक्तमें रक्त की गांठ न बने इसके लिये भी कभी कभी फस्द खोलनी चाहिये। यदि हाथ-पांव या यकृत प्लीहामें वायु रक्तका मार्ग रोककर एक दूसरेके सम्बन्धमें अन्तर उपस्थित कर दे तो वह स्थिति प्राणायाम होती है। अतएव ऐसी दशामें फस्द खोलकर रक्त निकालना चाहिये। अथवा तुम्बीसे रक्त निकलवावे या सिङ्गी लगाकर भी रक्त निकाला जा सकता है। यदि दाह और शूल हो तो ६४ तोले तक रक्त निकाला जा सकता है। यदि खुजली, चिमचिमाहट और चमड़ेमें शून्यता मालूम पड़ती हो तो सिङ्गी लगाकर रक्त निकलवावे। यदि विसर्पके लक्षण हों दोष और रोग लक्षण एक स्थानसे दूसरे स्थानमें फिरते हों तो फस्द खुलवाना चाहिये अथवा खोंच मारकर खून निकाले। यदि अङ्ग रूक्ष हो, शरीरमें श्यामता आ गयी हो अथवा वाताधिक्य अधिक हो तो रक्तमोक्षण न करावे। यदि धमनी

काठिन्यके कारण अवयवोंमें रक्त सञ्चार अच्छी तरह होता हो तो भी रक्तमोक्षण न कराइये। रक्ताल्पता और पाण्डुत्वमें भी रक्त-मोक्षण हानिकारक होगा। मस्तिष्कमें रक्त कम पहुँचनेसे पक्षाघात हुआ हो तब भी रक्त मोक्षण न करावें। सावधानीके साथ चिकित्सा की जाय तो यह रोग दुर्निवार्य नहीं है। रक्तविक्षेप वाले रोगीको स्नेहन-स्वेदन देकर विरेचन देना चाहिये।

चिकित्सा—

वायु सिराओंमें प्रवेश कर तत्रस्थ रक्तको दूषित करता है, उनमें शूल, सिरा सङ्कोच, सिराओंको भर देना और बाह्यायाम तथा आभ्यन्तरायाम द्वारा वक्रता ले आता है जिससे खल्ली और कुब्जत्व भी हो जाता है। कहा है—

> कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुंचन पूरणम्।
> स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्ली कुब्जत्वमेव च॥

रास्नादि पंचक—

रक्तविक्षेपमें दोष वायु प्रधान होता है। अतएव चिकित्सा करते समय वायुकी शान्तिका ध्यान सर्व प्रथम रखना चाहिये। वायुकी शान्तिके लिये रास्नापञ्चक क्वाथ प्रसिद्ध है, इसे यों ही या दूसरी औषधियोंके अनुपान रूपसे देना हितकारी होता है। रास्ना, पुनर्नवा सोंठ, गुडूची और एरड मूल सब समान भाग पांच पांच माशे या सम्मिलित २ तोले लेकर आध सेर जलमें क्वाथ करे। चौथाई शेष रहने पर मधु डालकर पिलावे। इसके सेवनसे सप्तधातुगत वायु, आम-युक्त वात तथा सर्वाङ्गगत वात दोष शान्त होते हैं।

रक्तविक्षेप रोगमें वातव्याधि की प्रधानता रहती है। साथ ही इसमें आक्षेप आते हैं, पक्षाघातका भी उपद्रव होता है, शाखागत

और शिरोगत विकार होते हैं। ऐसी स्थितिके लिये **महामाषादि तैल** की मालिश लाभदायक होती है।

१—यव, अलसी, छोटी भटकटैया, केवांचके बीज, कटसरैया की जड़, गोखरू, काले उड़द और श्योनाक, सब अट्ठाईस अट्ठाईस तोले लेकर ८९६ तोले जलमें पकावें जब चौथाई अर्थात २२४ तोले शेष रहे तब उतार छानकर एक सेर काले तिलके मूर्छित किये हुए तेलमें डालकर पकावे। जब तक पकता रहे इसी बीच बिनौले, बेरकी मिंगी, सनके बीज और कुलथी प्रत्येक छप्पन छप्पन तोले लेकर चौगुने जलमें पकावे जब अन्दाज ५६ तोले रहे तब इसे भी उसे पकते हुए तेलमें छोड़ दें। इसके बाद एक सेर बकरेका मांस लेकर ४ सेर जल डाल पकावे, एक सेर रहने पर इसका रस भी उसी तेलमें डाल दे। इसके पश्चात् गुच, कूट, सेंधानमक, रास्ना, पुनर्नवा, एरंड की जड़, पिप्पली, सौंफ, बरियारीकी जड़, प्रसारिणी, जटामांसी और कुलथी एक एक तोला लेकर कूट पीस कल्क बना चौगुना पानी डाल उसी तेलमें छोड़ तेल सिद्ध कर लें। इसीकी मालिश कराया करें।

पञ्चकोल चूर्ण—

रक्तविक्षेपमें यदि मन्दाग्नि, शूल, अरुचि, आमदोष, तथा कफ दोष दीखें तो पञ्चकोल (पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ,) चूर्ण भोजनसे पहिले लेकर भोजन किया करें।

अपराजितादि चूर्ण-

रक्तविक्षेप, में पांडु और रक्त हीनता हो, बवासीर और वातरक्त केसे लक्षण हों तो विष्णुकान्ता, पिप्पली, गुर्च, काली निशोथ, बाराहीकन्द, एरंडमूल और सोंठ समान भाग लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णको मट्ठे अथवा उष्ण जलसे सबेरे शाम लिया करे। इसमें

शुक्ति भस्म और मंडूर भस्म भी एक एक रत्ती मिलालें तो अच्छा लाभ करता है।

वैश्वानर चूर्ण-

इस रोगमें हृदय विकार, वात विकार, यकृत और प्लीहाके विकार, ग्रन्थि, शूल, आनाह, विबन्ध और उदर विकार रहा करते हैं। अतएव वैश्वानर चूर्ण लाभकारी होता है।

सैन्धवादि चूर्ण—

२ सेंधानमक, अजवाइन, मनिहारी नमक—तीनों दो दो तोला, अजमोद ३ तोला, सोंठ ५ तोला, हर १२ तोला सबका चूर्ण कर दहीके तोड़ या मट्ठे अथवा घीके साथ लेवे, अथवा कुनकुने जल के साथ लेवें।

दाहशान्तिके लिये—

३—परवर, कुटकी, शतावरी, आंवला, हर, बहेड़ा और गुर्च सब का काढ़ा कर पिलावें। इसे पटोलादि क्वाथ कहते हैं।

गुड़ूची क्वाथ-

गुड़ूची कफ और वातको नष्ट करती, कफ और मेदका शोषण करती है, कण्डू और विसर्पको नष्ट करती है। इसलिये रक्तविक्षेपमें ऐसे उपद्रव होने पर गुड़ूचीका स्वरस, कल्क, चूर्ण अथवा क्वाथ लिया करे। अथवा—

४—गुड़ूची, सोंठ, धनियां समान भाग एक एक तोला लेकर आध सेर जलमें पकावें : जब आधा पाव रहे तब उतार छान पीवें। अथवा ३ हरंका चूर्ण गुड़ मिला कर खावे और ऊपरसे ऊपर लिखा क्वाथ पीवे।

यदि शरीरमें रक्ताधिक्य तथा रक्तकी उल्बणता हो तो जलमें

सौबार घृतको धोकर राल मिलाकर शरीरमें लेप करे। इससे रक्त की उल्बणता व्यवस्थित होगी।

रक्त और पित्त की अधिकता होने पर शीतल पदार्थोंसे परिसेचन करे। यदि शरीरमें ललाई हो तो रक्त मोक्षण कराकर—

५—तिल, चिरौंजी, मुलहठी, कमलकन्द और वेतको दूधमें पीसकर उसमें घी मिला लेप करे।

सुधानिधि रस-

रक्तपित्त युक्त रक्तविक्षेपमें सुधानिधि रस बहुत लाभदायक होता है।

६—धनियां, सुगन्ध बाला, नागरमोंथा, सोंठ, सेंधा नमक सब समान भाग लेकर सबसे दूना मण्डूर भस्म मिलावे और गौ मूत्र, काला भांगरा, पुनर्नवा, भृङ्गराज, निगुंण्डी और मण्डूकपर्णी तथा गायके मट्ठे की दो-दो भावनाएं देकर रखे। इस औषधिको १ माशे से दो माशे तक दिनमें दो बार मट्ठे अथवा भृङ्गराजके रसके साथ दिया करें। भोजनमें नमक वर्जित करे। भोजन और पानमें मट्ठा ही देवें। इस कल्पके सेवनसे कामला, पांडु, ज्वर और शोथयुक्त रक्त-विक्षेप दूर होता है। अग्निप्रदीप्त होता है। ग्रहणी विकार नष्ट होता है। यह सभी व्याधियोंको नष्ट करनेवाला है।

द्वितीय सुधानिधि रस-

यदि रक्तविक्षेपके साथ रक्तपित्त अथवा अम्लपित्त हो तो द्वितीय सुधानिधि रस देवें।

७—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, इलायची, गठिवन, नागकेसर सब समान भाग लेकर खरल करे। इसके बाद जीरेके साथ खरल कर आतशी शीशीमें बन्द कर कपरौटी करे और दोपहर तक तुषाग्नि (धान की भूसी) में दबा कर आंच दे। फिर स्वांगशीत

होने पर निकालकर रखे। इसे दो रत्तीकी मात्रासे मिश्री और मधु मिलाकर देवे। यदि पेट साफ न रहता हो तो त्रिफलाका काढ़ा ऊपर से पिलावे। त्रिफलाका काढ़ा यों भी वी चीनी और मधु मिलाकर दिया जा सकता है।

वाताधिक्य रक्तविक्षेपमें-

८—अडूसा, गुडूची और अमिलतासके गूदेका काढ़ा कर एरंड का तैल मिलाकर पिया करें। अथवा—

९—परवर, कुटकी, शतावर, आंवला, हर्र, बहेड़ा, गुडूचीका क्वाथ पीनेसे दाहयुक्त रक्तविक्षेप नष्ट होगा। अथवा दशमूल डालकर दूधका क्षीरपाक कर लिया करे, इससे सिरा धमनी और शिराशूल नष्ट होता है। अथवा निशोथ, विदारीकन्द और गोखरूका क्वाथ पीवें।

पित्तोल्वण रक्तविक्षेपमें—

१०—खंभारके फल, मुनक्का, मुलेठी, अमिलतासका गूदा, लाल चन्दन और क्षीरकाकोलीका क्वाथ कर ठण्डा होने पर मिश्री और मधु मिलाकर पीवें। एवं धारोष्ण दूधसे निशोथका चूर्ण मुखमें रख उतारा करें। विरेचनके लिये गरम किये हुए दूधमें एरंड तेल मिलाकर पिया करें। अथवा—

११—परवर, गुडूची, शतावरी, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, और कुटकीका काढ़ा कर पिया करें।

कफाधिक्य रक्तविक्षेपमें—

असगन्ध और तिल पीस कर शरीरमें उबटन की तरह लगावें। अथवा जौके सत्तू, घी, जवाखार और कैथ की पत्ती या छाल पीसकर लेप करे।

रक्तविक्षेप-ब्लडप्रेशर

लेखकका वक्तव्य

अंग्रेजी शासनके समय देशमें एलोपैथी चिकित्सा पद्धतिका पूर्ण प्रभाव था। वह अपने पूर्ण प्रतापसे देश वासियोंके तन-मन और मस्तिष्क में अपना आतङ्क जमाये हुए थी। जो भी रोग और औषधि अंग्रेजी नामसे देशमें आविर्भूत होती, उसके सम्बन्धमें साधारणतया यही समझा जाता कि यह नयी बीमारी है। इसका नाम, वर्णन और चिकित्सा आयुर्वेदमें नहीं है। ऐसी बीमारियोंके सम्बन्धमें यही समझा जाता कि डाक्टरोंकी शरणमें जाने पर ही इनसे छुटकारा होगा। टाईफाइड, डायाविटीज, डेंगूफीवर, प्लेग, मैलेरिया, हिस्टीरिया आदि रोगोंके सम्बन्धमें तथा ब्लडप्रेशरके सम्बन्धमें भी ऐसा ही भ्रम फैल चुका था। ऐसे समय आयुर्वैदिक चिकित्सकोंका यह कर्तव्य हो गया कि वे इस प्रकारके नये विदेशी नामोंसे प्रसिद्ध होकर देशमें व्याप्त होने वाले रोगोंके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करें और आयुर्वेदके विवरणसे उनकी संगति बैठाकर उनका समाधान, निदान और चिकित्सा निश्चित कर आयुर्वेद की व्यापकता और अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करनेका प्रयत्न करें। वर्तमान पुस्तिका भी उसी प्रयत्नका एक अंश है। धन्वन्तरि पत्रके विशेषाङ्कके लिये कई वर्ष पहले यह लेख लिखा गया था और अब समझा गया कि पृथक प्रकाशित कर वैद्यों और वैद्यक विद्यार्थियोंकी सहायताके लिये और ब्लडप्रेशर व्याधि-ग्रसित लोगोंके उपकारके लिये मार्ग सुगम किया जाय।

इसके अवलोकनसे समझमें आवेगा कि यह कोई नयी व्याधि नहीं है बल्कि आयुर्वैदिक त्रिदोष पद्धतिके अनुसार प्राचीन वातव्याधि का एक रोग ही नये नाम और नये लक्षणादिसे लोगोंके रहन सहन और खानपानकी विषमताके कारण अधिकतासे प्रकट हो रहा है। आयुर्वेद त्रिकालाबाधित शाश्वत शास्त्र है। इसके सिद्धान्तके अन्तर्गत सभी नये पुराने रोगोंका समाधान प्राप्त हो सकता है और

उसकी चिकित्सा की व्यवस्था हो सकती है। भिन्न पद्धतिमें भिन्न नाम होना ही स्वाभाविक है; उसे प्रसङ्गानुरूप अपने शास्त्रमें ढूंढकर निश्चय करना ही उचित है। शास्त्रकार तो यहां तक कहते हैं कि दोषोंकी प्रवृत्ति और विकृति असंख्य रूपमें हो सकती है और उसके कारण नाना रूपकी व्याधियां उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिये यह आवश्यक नहीं कि सब विकारोंके नाम किये ही जायँ।

विकार नामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन
नहि सर्व विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवास्थितिः।

चिकित्सकको उचित है कि उनकी दोष सरणीका विचार कर चिकित्सा निर्धारित करे। यह दुरवस्था तो एलोपैथी वालोंमें ही है कि जब तक मलमूत्रादि परीक्षा द्वारा रोगका नाम निर्धारण न हो जाय तब तक उसकी चिकित्सामें चिकित्सक समर्थ नहीं हो सकता। आयुर्वेदकी व्यापकता और शक्ति अपार है। उसकी वैज्ञानिकता पुष्ट और बहुमुखी है। आयुर्वेद ऐसे नये नामोंसे प्रचलित रोगोंकी चिकित्सा करनेमें भी समर्थ है। अब देश स्वतन्त्र है। अतएव देशके कर्ता धर्ताओंको आयुर्वेदका व्यापक समर्थन कर उसकी शक्तिके विकासका सुअवसर देना चाहिये। यह पुस्तक ब्लडप्रेशर सम्बन्धमें इसी भ्रमका निवारण करनेके लिये लिखी गयी है और इसका बहुल प्रचार होनेसे ही लेखकका उद्देश्य सफल हो सकेगा। इसमें शास्त्राधारसे और एलोपैथीके सिद्धान्तोंका अनुशीलन पूर्वक ब्लडप्रेशरके सम्बन्धमें आवश्यक प्रकाश डाला गया है और उसकी चिकित्सा तथा पथ्या-पथ्यादिकी सावधानीका दिग्दर्शन किया गया है। इसके वाचनसे पाठकका समाधान होगा और उसे इस रोगसे बचने और औरोंको बचानेका सुगम मार्ग प्रकट होगा। इस उद्देश्यकी सिद्धि द्वारा आपके सन्तोषके साथ ही हमें भी कृतकृत्यताजन्य सन्तोषकी प्राप्ति होगी।

प्रयाग
पौष शुक्ल ११ सं० २०१० वै०

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

वातकफाधिक्य—

मसूर की दाल और सहजनेके बीज, मट्ठे में अथवा कांजीमें पीस कर लेप करे और एक घण्टे तक लगा रहने दे। इसके पश्चात् अम्ल पदार्थोंके द्रवसे शरीर पर छींटे मारे। नागरमोथा, आंवला और हल्दीका काढ़ा कर मधु मिलाकर पिया करें। अथवा हल्दी और गुडूचीके क्वाथमें या त्रिफलाके क्वाथमें मधु मिलाकर मीठा कर पीवें।

घृत योग-

इस बीमारीमें सादे घृत की अपेक्षा यदि औषधि सिद्ध घृत दिया जाया करे तो अति उत्तम होगा।

१२—गौ घृत और गौ दुग्ध एक एक सेर, शतावरी कल्क १ पाव, शतावरी स्वरस ४ सेर, घृत विधिसे शतावरी घृत सिद्ध करे। अथवा—

१३ गौ घृत १ सेर, गुडूची कल्क १ पाव, गुडूची स्वरस ४ सेर घृत विधिसे गुडूची घृत सिद्ध करें। अथवा—

१४—घृत, दूध, गुडूची स्वरस, मट्ठा सब बराबर बराबर लेकर घृत सिद्ध करें।

नित्य शरीरमें मालिशके लिये गुडूच्यादि तैल उत्तम है।

गुडूच्यादि तैल-

१५—१०० पल गुडूचीको १०२४ तोले पानीमें पकावे। जब चौथाई अर्थात २५६ तोले शेष रहे तब उतार छान कर चार सेर तैल में इस काढ़ेके जलको डालकर पकनेके लिये चढ़ावे। उसमें १२ सेर गौ दुग्ध भी डाले। इसके सिवाय मुलेठी, मजीठ, कूट, इलायची, अगर, मुनक्का, जटामाशी, नख, थूहर, निगुण्डी, सोंठ, गोरखमुंडी, मिर्च, पीपर, सौंफ, ककड़ासिङ्गी, अनन्तमूल, दालचीनी, तेजपात, तगर, अरणी, पृष्ठिपर्णी, भूम्यामलकी, श्वेतसारिवा, लाल चन्दन, नागकेशर, हाऊबेर, पद्माख, नील कमल, जीवन्ती, काकाली, क्षीर

काकोली, मेदा, बन मूङ्ग, महामेदा, बनउड़द, जीवक, ऋषभक, मुलहठी एक एक तोला लेकर पीस कर कल्क बनावें। और १ सेर जलमें घोलकर उसी पकते हुए तेलमें छोड़ तेल सिद्ध कर लें। इस तेलकी मालिश, पान और अनुवासनवस्तिमें उपयोग करे। इसके उपयोगसे धमनी, सिरा आदि स्रोतस खुलते और साफ होते हैं। वात, पित्त और रक्तके दूषण दूर होते हैं। स्वेद, कंडू, वेदना, आयाम, कम्प, शिरः कम्प, अर्दित, और व्रण विकार दूर कराता है।

इस बीमारीमें शिलाजीत और गुग्गुल युक्त औषधियां अधिक लाभदायक होती हैं।

चन्द्रप्रभा गुटिका इसमें सर्व श्रेष्ठ है।

१६—वायबिडङ्ग, कपूर, चीता, सोंठ, मिर्च, पीपर, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, देवदारु, चव्य, चिरायता, पिपरामूल, नागरमोथा, कचूर, बच, सुवर्णमाक्षिक भस्म, यवक्षार, सेंधा नमक, हल्दी, दारुहल्दी, धनियां, गजपीपर, मुग्दपर्णी, अतीस सब एक एक तोला, शिलाजीत ३२ तोला, शुद्ध गुग्गुल और लौह भस्म आठ आठ तोला, मिश्री १६ तोला, वंशलोचन, निशोथ, दन्तीकी जड़, तेजपात, दालचीनी, इलायची के दाने सब चार चार तोला सबको कूट पीसकर चार चार रत्ती की गोली बना लें। इसमें चाहें तो १ तोला मोती भस्म और एक तोला वङ्ग भस्म और एक तोला नागभस्म भी मिला दें। इसे दूधसे या अन्य उचित अनुपानसे अथवा त्रिफलाके काढ़े या गुडूचीके हिमसे लिया करें। इसके सेवनसे पुराना ज्वर, अतीसार, ग्रहणी विकार, छहों प्रकारके अर्श, भगन्दर, कामला, पांडु, रक्ताल्पता, सिरा धमनियोंका शोथ, सिरा धमनियोंका सङ्कोच और कड़ापन, मधुमेह, प्रमेह, आदि विकार नष्ट होते हैं। यही नहीं वात, पित्त, कफसे उत्पन्न होने वाले रोग, नाड़ी व्रण, मर्मगत व्रण, क्षय, गृध्रसी,

राजयक्ष्मा, हस्तिमेह, वीर्य, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, धातु प्रवाह, तथा उदर विकार भी नष्ट होते हैं। सम्पूर्ण धातुगत विकार, वलीपलित विकार नष्ट होते हैं। बुढ़ापेके दोषसे होने वाले समस्त विकार इससे आराम होते हैं। इसमें डालनेके पहले गुग्गुल, शिलाजीत और लौह भस्मको गुडूची स्वरस, भृङ्गराज स्वरस, धनियांका काढ़ा, त्रिफला रस और परवरके रससे भावना देकर अधिक गुण युक्त बना लेना चाहिये।

कैशोरगुग्गुल-

रक्तविक्षेपमें वातके साथ रक्त भी दूषित होता है। कभी कभी उपदंश जन्य विकार भी इसमें कारणीभूत होते हैं। अतएव वात और रक्त दोनोंकी शुद्धि करने वाले योग इसमें लाभदायक होते हैं। इस कार्यके लिये किशोर गुग्गुल सर्वोत्तम है। गुग्गुल वात नाशक रसायन और रोपण गुण वाला है।

गुग्गुलमें आयोडीनका गुण विद्यमान है। यह रूक्षता लाने वाले तथा अनुपयुक्त कफ और मल दोष, धमनी, सिरा और आशयोंको शोधन करता है। मैंसिया गुग्गुल गुडूची और त्रिफला क्वाथसे शुद्ध करनेके लिये ६४ तोले लेवे। शोधनके लिये त्रिफला ६४ तोले और गुडूची २८ तोले, तथा पानी ८ सेर डालना चाहिये। कलछीसे चलाता रहे, जब आधा सेर पानी रहे तब उसे उतार कपड़ेसे छान ले, फिर कड़ाहीमें डाल औटावे और कलछीसे चलाता रहे। जब गाढ़ा हो जाय तब उतार ले। इसके बाद—

१७—हर्र, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, बायविडङ्ग, निशोथका चूर्ण दो दो तोले, दन्ती और गुडूचीका चूर्ण चार चार तोले लेकर गुग्गुलमें मिलादें और एक एक माशे की गोली बनालें। इसे दूध या किसी काढ़ेसे उतारा करे अथवा सारिवाद्यरिष्ट, गुडूची हिम या मञ्जिष्ठादि क्वाथके साथ लिया करे।

इसके सेवनसे एक दोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज, भग्न, स्रावयुक्त, शुष्क या फटा हुआ वातरक्त, रक्तदोष, व्रण, धमनी और सिराओं का शोथ, धमनी काठिन्य, मस्तिष्क विकार, खांसी, कुष्ठ, गुल्म, गांठ, शोथ, गर विष, पांडु, रक्त हीनता, प्रमेह, मन्दाग्नि, मधुमेह, प्रमेहपिडिका आदिका नाश होता है। निरन्तर सेवनसे वात और रक्तके विकार, बुढ़ापेके कारण उत्पन्न होने वाले विकार दूर होते हैं। मनुष्यमें कैशोरावस्थाके समान सौन्दर्य और स्फूर्ति आती है इसीसे इसे किशोर गुग्गुल कहते हैं। इसे घी और गुड़में मिलाकर भी ले सकते हैं। डाक्टर लोग एट्रोपीन देकर जिस लाभ की आशा रखते हैं वह इससे प्राप्त होता है। क्योंकि यह वेगस कफ नाड़ी, पेरासिम्पेथेटिक अर्थात् इडा नाड़ीसे मिले हुए कफ प्रधान सिम्पेथेटिक तन्तुओंको शुद्ध और सतेज करता है। उन्हें साम्यावस्थामें रख सिम्पेथेटिक तन्तुओंकी उत्तेजना घटाता है। एट्रोपीनका गुण धर्म धतूराके समान है। उससे वातशमन होता है किन्तु संकोचक गुण होनेसे धमनियों में उनका असर नहीं होता। गुडूचीके अनुपानसे किशोर गुग्गुल अच्छा काम करता है। पेरासिम्पेथेटिक कफनाड़ी इडाकी शक्ति बढ़ानेके लिये और उसकी उत्तेजना घटानेके लिये डाक्टर लोग एसीटीलकोलीन दिया करते हैं। वैद्य लोग गुडूची घृत तथा वसा मज्जाका उपयोग कर कफ पोषक गुण उत्पन्न कर सकते हैं।

यदि रक्त दोष अधिक हो और फिरंग या उपदंशका विष शरीरमें मौजूद हो तो किशोर गुग्गुलके साथ महामंजिष्ठादि क्वाथ पियें अथवा सारिवाद्यरिष्ट लेवें।

लोब्लडप्रेशर—

शरीरमें पोषणतत्वके अभावसे अथवा भय, शोक, क्रोध, मानसिक चिन्ता, अतिरिक्त मानसिक परिश्रमसे पोषण शक्ति क्षीण हो जाने से निम्न विक्षेप या नीचैः विक्षेप अर्थात् लोब्लडप्रेशर की शिकायत

होती है। इसके लिये आवश्यक है कि चन्द्रप्रभा वटी लेवें। मुक्ता, शौक्तिक, प्रवाल, शङ्ख, अकीक भस्म, मांडूर मिलाकर त्रिफला और घीके साथ लेवें और ऊपरसे दूध या क्षीरपाक किया हुआ दूध लेवें अनार, अंगूर, अंजीर, संतरा, सेब, नासपाती, पपीता, टमाटर आदि लिया करें। मुलैठी, जीवक, ऋषभक एक एक माशा लेकर एक तोला घीमें मिलाकर चाटें और ऊपरसे दूध पीवें।

योगसारामृत—

१८—शतावरी, गंगेरन और विधारा, दूधमें शोधी हुई और छिलका निकाली हुई सफेद घुंघची, गुडूची, पुनर्नवा, पीपर, असगन्ध, तथा गोखरू, सब दश दश तोले लेकर चूर्ण करें। सब दवाइयोंकी आधी अर्थात् ४५ तोला मिश्री लेवें और सबको मिलाकर घोटें। एक अमृतबानमें दवा रख उसमें ३२ तोले मधु, १६ तोले घी और तजकलमी, तेजपात तथा इलायचीके दानोंका सम्मिलित चूर्ण ४ तोले डालकर रख दें। अग्नि बलके अनुसार इसका सेवन करें। यह योग लोब्लड-प्रेशरके लिये सर्वोत्तम है। विशेषता यह कि यह हाई ब्लडप्रेशरको भी साम्यावस्थामें ले आता है। इसके सिवाय वातरक्त, कुष्ठ, क्षय, दुबलापना, पित्त तथा रक्तसे उत्पन्न दोष एवं वात, पित्त, कफसे उत्पन्न अन्य रोग शान्त होते हैं। इसे सेवन करने वालोंमें यथेष्ट बल की वृद्धि होती है। अकालमें बाल सफेद नहीं होते, कुसमयमें शरीर में झुर्रियां नहीं पड़तीं, मस्तिष्क शुद्ध रहता है, मेधाशक्ति और स्मरण शक्ति बढ़ती है। मनुष्य पूर्ण आयुष्य भोगता है। इसका सेवन करने वाला मनुष्य व्यायाम, मैथुन, क्रोध, उष्ण पदार्थ और उष्ण जलवायु तथा अम्ल और लवणरसका सेवन, दिवानिद्रा, अभिष्यन्दी और गुरु पदार्थोंका सेवन बन्द कर दें।

यदि रक्तविक्षेपके साथ शिरो वेदना भी हो तो महा लक्ष्मीविलास रसका सेवन करे। अथवा स्वर्णमाक्षिक, मौक्तिक, प्रवाल और यशद-

भस्म, अकीकभस्म, जवाहरमोहरा, पुखराजभस्म, वैक्रान्त भस्ममेंसे यथावश्यक लेकर घृत मधु या घृत मिश्रीके साथ लिया करे।

सन्धिवातके समान जोड़ोंमें दर्द होता हो तो बकरीके दूधमें अलसी पीस पकाकर बांधे अथवा महुआ पीसकर गरम कर बांधे। शुद्ध गन्धक भैंसके घीके साथ चाटकर ऊपरसे गोमूत्र पीवे तो वृक्क दोष मिटेगा। श्वेतपर्पटीका भी उपयोग कर सकते हैं। आंतें साफ रखनेके लिये बीच बीचमें वस्ति लिया करे। रक्त शोधनके लिये अनन्तमूल, राल, मंजीठ, मुलैठी और मुंडीका काढ़ा या अर्क लिया करे। पद्म ख. सुगन्धबाला, मुलैठी, लाल चन्दन और हल्दीका काढ़ा पीनेसे वात पित्त जनित दोष शान्त होते हैं। ऐसे काढ़ेमें यदि एरण्ड तैल मिलाकर लें तो अधिक लाभदायक होगा; क्योंकि स्रोतसोंसे क्लेद निकाल कर यह आंतोंमें ले आता है। अपने स्निग्ध गुणके कारण यह रूक्षता की जगह चिकनाई भी ले आता है। कफ, पित्त, विकारके लिये तिलका तैल उपयोगी है। यह अपने स्निग्ध गुणके कारण कफका पोषण करता है, उष्णवीर्य होनेके कारण वायुका शमन करता है, और कफ का सञ्चय नहीं हो सकता है, स्निग्धताके कारण पित्तका प्रकोप नहीं होने पाता।

क्वाथमें प्रक्षेपके लिये अथवा किसी औषधिके अनुपानके लिये यदि कफ की अधिकता हो तो मधु लेवें। पित्तकी अधिकता हो तो घी लेवें, वात प्रकोप हो तो एरण्ड तैल या औषधि सिद्ध कोई तैल लेवें। नाड़ी तन्तुओंके छोरमें पित्तसे वेदना हो तो घीमें मुलहटी पकाकर लगावें या छींटे मारें। इससे ज्ञान तन्तुओंकी कैसी ही पीड़ा हो शान्त होगी। नाड़ी तन्तुओंकी उत्तेजना घृत प्रयोगसे मिटती है।

यदि शरीरमें ओज की कमी हो और मस्तिष्क तथा ज्ञान तन्तुओं में क्षीणता आ गयी हो तो चन्द्रप्रभाके अतिरिक्त वृहत् वातचिन्तामणि या चिन्तामणि चतुर्मुख घीके साथ अथवा सारस्वतारिष्ट और अर्क

वेदमुश्क मिलाकर देवे। पाखाना साफ लानेके लिये कभी कभी आरोग्यवर्धिनी दूधके साथ लेवे। अथवा अभयादि काथके साथ देवे। चन्द्रप्रभाके साथ प्रवाल भस्म, मोतीकी भस्म और गुर्चका सत्व मिलाकर देवे। स्वर्णमालिनीवसन्त इसमें देनेसे ज्वर, क्षीणता और रक्तागमका भय नहीं रहता। मधुमेह भी होतो वसन्त सुकुमाकर भी दे सकते हैं, च्यवनप्राशका लेना भी सुरक्षित रहता है।

वैद्यकल्पतरुमें एक पाक लिखा गया था। दो सेर चावल दूधमें मिलाकर रखे, १२ घण्टे पीछे निकालकर सुखाये और पीसकर आटा बनावे। उसमें तीन पाव चीनी, आधा सेर हल्दी, एक पाव सोंठ मिला- कर घीमें पकाकर आधी-आधी छटांकके लड्डू बनावे। एक लड्डू नित्य खाया करे। इससे ब्लडप्रेशरमें बहुत लाभ होता है।

ताम्र योग—

प्रति बार ताम्र भस्म डेढ़ चावल और शुद्ध गन्धक १ माशा मिला- कर मधुके साथ दिनमें दो बार चाटनेसे रक्त शुद्ध होता है; और रक्तविक्षेप घटता है।

रुद्राक्षका प्रभाव—

दिव्य औषधियोंका प्रभाव अनन्त होता है। उनके धारणसे भी लाभ देखा जाता है। जैसे हृद्रोगमें हरा पत्थर नादली पहननेसे दिल की धड़कन कम होती है, उसी प्रकार ब्लडप्रेशरमें रुद्राक्ष की माला पहननेसे रक्तचाप घटता है। नित्य गुलाब जलमें रुद्राक्ष घिसकर चाटनेसे भी लाभ होता है।

सर्पगन्धाका योग—

सर्पगन्धाको कहीं ईश्वरमूल, कहीं धवलबरुवा या चांदबरुवा भी कहते हैं। मराठीमें इसे सापसन्द गुजरातीमें शापसन या नोलबेल, उड़ीसामें आडकई कहते हैं। इसके सेवनसे मस्तिष्कको आराम

मिलता है और निद्रा आती है। इसलिये यह उन्मादमें भी लाभदायक होती है और "पागल की दवा" के नामसे भी प्रसिद्ध है। डाक्टर लोग भी सर्पिना टेबलेट नामसे इसकी गोलियोंका प्रयोग करते हैं। यह बहुत कटु होती है। उष्णवीर्य भी हैं, पित्तप्रकृति वालोंको इसके सेवनसे पसीना छूटता और कभी कभी मूर्छा भी आ जाती है। किन्तु वातानुलोमन करनेमें इसका अच्छा उपयोग होता है, अतएव यह हाईब्लडप्रेशरको घटाती और अच्छी निद्रा लाती है। यह स्वेदन गुण विशिष्ट होनेसे स्रोतसोंको खोलती और नरम करता है। यदि इसे चूर्ण कर दूधके साथ घोटकर उपयोगमें लावें तो पित्त वर्धक गुण भी कम पड़ जाता है। चार रत्तीसे कम खुराकोंमें लाभ नहीं पहुँचाती। अतएव प्रतिबार ६ से १२ रत्ती तक सर्पगन्धा दो-तीन रत्ती काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर मधुके साथ सबेरे शाम और रातमें सोनेके समय चाटें। **निद्राके लिये**—

१९—सर्पगन्धा १ माशा, जवासाकी जड़ १ माशा, जटामासी १ माशा, काली मिर्च ५ दाने, गुलकन्द १ तोला लेकर सबको पीस एक तोला मिश्री मिला एक छटांक पानीमें शर्बत बनाकर पीवें; अथवा चूर्ण मुखमें रख गुलकन्द और दूधसे उतारे। वह ज्वरघ्न भी है।

२०—निम्नविक्षेपमें रससिंदूर २ रत्ती, मोती भस्म एक रत्ती या शुक्तिभस्म २ रत्ती, प्रवाल भस्म २ रत्ती, लोह भस्म १ रत्ती लेकर दो पुड़िया बनावें और सबेरे शाम मधुसे लेवें रससिंदूरके बदले मकरध्वज या चन्द्रोदय भी ले सकते हैं। कोई कोई संखिया या मल्लसिन्दूर और कुचलेका योग भी उपयोगमें लानेकी सलाह देते हैं। तैलाभ्यङ्ग और स्वल्पव्यायाम इसके लिये हितकारी हैं।

सावधानी और पथ्यापथ्य—

इस रोगका जो विस्तृत विवेचन किया गया है; उससे समझमें

आवेगा कि उचित सावधानी रखी जाय तो इस रोगसे छुटकारा मिल सकता है। किस प्रकारके आहार विहारसे उचित रस बन सकता है और किस प्रकार रक्तका दूषित होना रोका जा सकता है, इस मर्म को समझ लेनेसे इस रोगसे छुटकारा पाना सम्भव है। रक्त शुद्ध रहे इसका सदा ध्यान रहे। शुद्ध रक्त भी पचन क्रियामें सहायक होता है। चिकित्सकका कर्तव्य है कि रोगीकी दिनचर्याका पता लगाकर उसे अधिक शारीरिक और मानसिक परिश्रम करनेसे रोक दे। चिन्ता, शोक और क्रोधके अवसरोंसे रोगी बचता रहे। आराम करना इस रोगमें हजारमें एक औषधि है। जिसमें थकी लगे ऐसा शारीरिक परिश्रम और चित्त उद्विग्न हो ऐसा मानसिक परिश्रम न करे। नित्य टहलना और हल्का व्यायाम आवश्यक है। स्वच्छ जलवायुके स्थानमें, निर्मल झरने और सरोवरके किनारे कुछ दिनों रहना अच्छा है। कभी कभी कमसे कम सप्ताहमें एक बार कोई भी परिश्रमका काम न कर विश्राम करे। दिनमें हल्का भोजन करे, रातमें यदि अच्छी भूख न हो तो भोजन न कर कुछ दूध ले लिया करे। पुराने चावलका भात, या जव या गेहूं या कूटूके आटेकी रोटी, मूंग की दाल, कभी कभी जीरेमें छौंकी हुई अरहरकी दाल भी ले सकते हैं। पपीता, लौकी, नेनुवां, पालक, परवर तथा चौराईका शाक, जीरा, धनियां, लौंग, इलायची, तेजपात, दालचीनीका मसाला, घी, दूध, मट्ठा, मक्खनका उपयोग हितकर है। रातका भोजन हलका हो। फलोंमें अमरूद, पका पपीता, सेव, अंजीर, अंगूर, अनार, सन्तरा, मुसम्मी आदि यथावश्यक यथारुचि ले सकते हैं। सूखे मेवोंमें किसमिस, बादाम, अंजीर, मुनक्का, छुहारा आदि ले सकते हैं। पेट हल्का रहे, पाचनशक्ति कायम रहे, पाखाना साफ होता रहे इसकी सावधानी रखनेसे अवश्य आरोग्य लाभ होगा।

———

सिंहावलोकन

खानपानकी भिन्नता, रहन सहन और शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम की व्यवस्थाके कारण प्रत्येक मनुष्यके शारीरिक रक्तभ्रमण क्रम में अन्तर होना स्वाभाविक है। अतएव अधिक या कम रक्तविक्षेप होनेसे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। उचित चिकित्साका अवलम्बनकर और रहन-सहनका अनुकूल क्रम परिवर्तन कर इस रोगसे छुटकारा पाया जा सकता है। आयुर्वेद किसीको दुःखी और चिन्तातुर नहीं देखना चाहता। उसकी चर्याका आचरणकर कोई भी आरोग्य सुखका यथेष्ट लाभ उठा सकता है। अपने पर विश्वास कीजिये। अपने शास्त्र और अपने विज्ञान पर विश्वास कीजिये ; आप निश्चय सुख और सन्तोषकी प्राप्ति कर पावेंगे। एलापैथी भले ही इसकी कारण-परम्परा और चिकित्सा व्यवस्थामें अब तक सफल न हुई हो; किन्तु आयुर्वेद ऐसा पूर्ण शास्त्र है कि वह प्रत्येक मनुष्यकी गतिविधि और रोग लक्षणोंकी विभिन्नताका सूक्ष्म विचार कर उचित मार्ग प्रदर्शनमें समर्थ है। अब तो पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इस सिद्धान्त पर पहुँच रहे हैं कि "यथार्थमें उच्च रक्तचाप कोई रोग नहीं है बल्कि किसी शारीरिक गड़बड़ीका लक्षण है। जिस प्रकार सर्दी लगनेसे सिर दर्द या ज्वर हो आता है।" पाश्चात्योंकी यह समझ भी अभी परिपक्व नहीं है। क्योंकि

रोगस्तु दोष वैषम्यं, दोषसाम्यमरोगता।

जब शारीरिक दोषोंकी विषमतासे शरीरगत धातुओंमें वैषम्य उपस्थित होता है तब उस विषम अवस्थाका ही नाम रोग है। अतएव स्वाभाविक रक्तभ्रमण तो रोग नहीं बल्कि आवश्यकशारीरिक क्रिया कलाप है ; किन्तु दोष विषमताके कारण धातु वैषम्य होते ही उसका

नाम रोग हो जाता है। ज्वरके पहले सर्दी और शिर दर्द होना ज्वरका पूर्व रूप है, इसी प्रकार रक्तभ्रमणमें अन्तर पड़ना या नाड़ियोंका कड़ा पड़ जाना भावी निद्रा नाश, शिर दर्द आदिका पूर्वरूप है।

ऐसे लक्षणोंसे युक्त रोगीको चिन्ता और परेशानीमें नहीं पड़ना चाहिये। मनको ठिकाने रख सुयोग्य चिकित्सककी सलाहसे अपना जीवन क्रम सुधारनेका प्रयत्न करना चाहिये। व्यस्त जीवन और क्षुब्ध वातारण इस रोग की वृद्धिमें सहायक होता है। धैर्य, शान्ति और गम्भीरताके साथ क्रोधके अवसरोंपर मनको ठिकाने रखनेका प्रयत्न करना चाहिये अन्यथा आप विपत्तिको निमन्त्रित करेंगे। कार्यालय कार्यके लिये है, कार्यालयका कार्य कार्यालयमें निपटानेका प्रयत्न कीजिये। घरमें विश्राम, मनबहलाव और गार्हस्थ कर्तव्य तथा अपने लड़के बच्चोंके प्रेम सरोवरमें अवगाहनका सुख उठाइये। अपने समाज, धर्म और देशके कर्तव्य पालनमें भी हिस्सा बटाइये। जो मनुष्य घरमें भी कार्यालयकी फाइलें लाकर अपने जीवनको व्यस्त और क्षुब्ध बनाया करता है वह अनारोग्य और रक्तचापको निमन्त्रण देता है। छोटी मोटी बातों पर क्षुब्ध होने की आवश्यकता नहीं। कुछ कार्य आपकी रुचि और इच्छाके प्रतिकूल होते हों तो भी उनका समाधान शान्तिसे कीजिये, बौखलाहट या झुंझलाहटसे आपका मानसिक सन्तुलन बिगड़ सकता है। उषःकालमें हाथ मुँह धोकर कुछ पानी पी लेना और शामके समय भी इच्छा हो तो कुछ पानी पीना अच्छा है। इससे रक्तमें तरलता आती और उसका भ्रमण ठीक से होता है। शाम सबेरे टहलना बहुत लाभदायक है। यदि दूर तक बाहर जाकर टहलनेका समय न हो तो पासके किसी उद्यान या पार्कमें अथवा घर की ही खुली छत पर थोड़ी ही देर टहल लिया करें। जब कार्य करते करते थकी मालूम पड़े, शिरमें भारीपन और नेत्रमें आलस्य

क्रोध हो तब थोड़ी देर तक काम बन्द कर दीजिये। शराब, चाय, काफी और तमाखू आदि नशे और दुर्व्यसन की आदत न डालिये। यदि ऐसी आदत हो तो धीरे धीरे छोड़नेका प्रयत्न कीजिये। सबेरे एक पात्र धारोष्ण या साधारण पका हुआ दूध पी लेना बस है। दश और बारह बजेके बीच मध्यान्हका भोजन कर लें। आवश्यक हो तो चौथे पहर ३ या ४ बजे कुछ फल या थोड़ा दूध ले लें। रातका भोजन आठ और नौ बजेके बीच कर लें। रातको कभी भरपेट भोजन न करें। सोनेके पहले कुछ दूध ले सकते हैं। रातमें दश और ११ बजेके भीतर सो जाइये। सबेरे चार बजेके बाद पांच बजे तक उठ-जाइये। प्रायः छोटे कद और मोटे तथा कड़े शरीर वालोंको तथा अधिक परिश्रम करने वाले, शिक्षक, मजदूर, दूकानदार और ड्राइवरों को भी यह बीमारी होने लगी है। लम्बे, पतले और छनहने कद वालों को प्रायः यह रोग नहीं होता। किसीके माता-पिताको यह बीमारी हो तो पैतृक दोषसे लड़कोंको भी बत्तीस वर्षके भीतर भी हो सकती है। साधारणतः सुस्ती रहना, शिरमें पीड़ा होना और चक्कर आना रक्तचापका पूर्वरूप है। ऐसे समय चटपटे और नमकीन (अधिक नमक वाले) पदार्थोंको छोड़ देना चाहिये। परिश्रम कम कर विश्राम अधिक करना चाहिये।

डाक्टर लोग प्रायः रक्तचाप कम करनेके लिये पोटैशियमथायो-साइनेट दिया करते हैं। परन्तु यह विषाक्त है और रक्तमें रह जानेसे विपत्ति की सम्भावना रहती है। नमक छोड़ देना या कम कर देना सर्वोत्तम उपाय है। दूध, फल, जव, गेहूं, चावलका आहार रखे। सप्ताहमें एक दिन या कमसे कम महीनेमें दो दिन उपवास अवश्य करे। उस दिन केवल पानी या कुछ दूध ही लेवे। अधिक लेना हो तो कुछ फल आम, अमरूद, अनार, सन्तरा, खरबूजा, खीरा आदि

लें। वातवर्धक, रूखे, कड़े, अधिक उष्ण पदार्थ न लें; क्योंकि इनसे नाड़ी स्रोत सूखने और बन्द होनेका भय रहता है।

चन्द्रकला

रक्तचाप की चिकित्साके सम्बन्धमें ऊपर काफी लिखा जा चुका है। सर्पगन्धाके विषयमेंमें लखनऊ की अनुसन्धान शालामें भी परीक्षण हुआ है और उसे रक्तचापके लिये सफल औषधि माना गया है। अमेरिकामें अब इसकी मांग बढ़ गयी है। कब्जके लिये इसबगोलका प्रयोग अनुभूत माना गया है। हिमालय की बूटी "जख्मेहयात" के द्वारा एक औषधि तैयार की गयी है जो अपरेशनके समय उस अङ्ग को शून्य बना देनेमें सफल है। शार्ङ्गधर और रसयोग सागरमें चन्द्रकला नामक एक रसौषधि लिखी है। यह रक्तवाहिनियोंपर स्तम्भक और प्रसादक कार्य करने वाली है। जब रक्तका दबाव बढ़ जाता है और शरीरमें दाह होता और चक्कर आने लगते हैं, मूर्च्छा की स्थिति भी होती है तब चन्द्रकला प्रयोग लाभदायक होता है। सान्निपातिक ज्वरमें जब ऊष्मा बढ़ कर बेचैनी होती है, शिर पर बर्फ की थैली रखने पर भी ज्वर नहीं घटता, रोगीका जीवन संकटमय हो जाता है तब भी चन्द्रकलाका प्रयोग हितकारी होता है। उद्रिक्त रक्तपित्त तथा रक्तमूर्च्छा विकारमें भी चन्द्रकला अच्छा काम करती है। कभी कभी तो ताप्यादि लौह, सारिवासव, चन्द्रप्रभा, मकरध्वज-गुटी, लक्ष्मीविलास और सुवर्णमालिनीवसन्तसे भी चन्द्रकला अच्छा काम करती है। वातके साथ पित्तयुक्त रक्तविक्षेपमें तो इसे आंख मूंद कर दे सकते हैं। चन्द्रकलाका पाठ नीचे लिखे अनुसार है—

प्रत्येकं तोलमादाय सूतं ताम्रं तथाभ्रकम्
द्विगुणं गन्धकं चैव कृत्वा कज्जलिकां शुभाम्।
मुस्ता दाडिम तोयेन केतकीमूल वारिणा।

सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटोशीर मागधीः ॥
श्री खण्डं सरिवा चैषां समानं चूर्णकं क्षिपेत् ।
द्राक्षाफल कषायेण सप्तधा परिभावयेत् ।
छायाशुष्कं विधायाथ वटी कार्या चणोपमा
महाचन्द्रकला नाम्ना रसेन्द्रोऽयं निरूपितः ।
अम्लपित्त प्रशमनः प्रदरध्वंसकारकः
अन्तर्बाह्य महादाह विध्वंसन महाधनः ॥
ग्रीष्मकाले शरत्काले रक्तविक्षेपणे हितम् ॥
रक्त मूर्च्छा रक्तपित्त पित्तज्वर दवानलः
मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि प्रमेहानपि दुस्तरान्
हन्त्येष रसो नूनं देहे चन्द्रकला प्रदः ॥

अर्थात्—एक तोला हिङ्गुलोत्थ पारद और २ तोले शुद्ध आंवलासार गन्धक लेकर कज्जली बनावे। फिर उसमें क्रमशः एक एक तोला वनस्पति जारित ताम्रभस्म और अभ्रक भस्म मिलाकर घोट दे। इसके बाद नागरमोथा क्वाथ, अनारका रस, केतकीकी जड़का रस, सहदेवीके रस और घृतकुमारीके रस की अलग अलग सात सात भावना दे। इसके बाद पित्तपापड़ा, खस, सुगन्धवाला, छोटी पीपर, सफेद चन्दन और कृष्णासारिवाका चूर्ण एक एक तोला मिलाकर मुनक्केके काढ़ेकी सात भावना देवे और चनेके बराबर गोलियां बनाकर छायामें सुखा लेवे। उचित अनुपानके साथ देवे। यह रस बढ़े हुए रक्तचापके लिये गुणकारी है। इतिशम्

मुद्रक और प्रकाशक—

आयुर्वेदरत्न **पं० राजेन्द्रचन्द्र शुक्ल**
सुधानिधि प्रेस, ३ सम्मेलनमार्ग, प्रयाग

प्रथमबार-एक हजार